मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 77 ● वर्ष 9, अंक 02 ● अप्रैल 2019 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

गाँव-देहात की मेहनतकश आबादी के हालात और उनके लिए मज़दूर पार्टी का एजेण्डा 6

मोदी राज में न्यायपालिका का हाल : अच्छा है कि लोगों के भ्रम टूटें, आँखें खुलें 7

नेताओं को न्यौता पहले आम चुनाव के वक़्त लिखा शैलेन्द्र का गीत 15

जनता को फ़ासिस्ट उत्पात से निजात पाने की आस, पर विकल्प कहाँ है?

मेहनतकशों को अपना क्रान्तिकारी विकल्प खड़ा करना होगा!

इसमें कोई शक़ नहीं कि पिछले पाँच साल देश के मेहनतकश अवाम, छात्रों-नौजवानों, स्त्रियों, अल्पसंख्यकों, दलितों और सभी संवेदनशील, इंसाफ़पसन्द लोगों पर भारी गुज़रे हैं। देश का बहुमत चुनाव में फ़ासिस्ट मोदी सरकार और संघी संगठनों के उत्पात से निजात पाने की उम्मीद लगाये है। न केवल इस सरकार के सारे वादे झूठे साबित हुए हैं और इसने अपने कॉरपोरेट आक़ाओं की तिजोरियाँ भरने के लिए जनता की पीठ पर मुसीबतों का पहाड़ लाद दिया है, बल्कि इन पाँच सालों के दौरान इसने पूरे देश को नफ़रत, अविश्वास, मूर्खता और अन्धभक्ति के ज़हर से इस क़दर भर दिया है कि उसे पूरी तरह साफ़ करने में शायद पीढ़ियाँ गुज़र जायेंगी।

नरेन्द्र मोदी और उनकी सरकार के पास अपने काम के नाम पर वोट माँगने की हिम्मत नहीं है, इसलिए अब वह और भाजपा के तमाम नेता खुलकर अन्धराष्ट्रवाद और हिन्दू-मुस्लिम की दुहाई लगे हैं। एक बार फिर पूँजीपतियों ने तिजोरियाँ खोल दी हैं और अन्धाधुन्ध पार्टी प्रचार और मीडिया के ज़रिए एक हवा पैदा करने की कोशिश की जा रही है, ये अलग बात है कि मामला कुछ बन नहीं रहा है।

सम्पादक मण्डल

दूसरी ओर, विपक्ष तमाम कोशिशों के बावजूद एक हो नहीं पाया है; अपने-अपने स्वार्थों और हितों के टकराव के चलते इनके लिए ऐसा कर पाना सम्भव भी नहीं था। तमाम क्षेत्रीय पार्टियाँ अपने-अपने इलाक़े में ताल ठोंक रही हैं मगर इतिहास बताता है कि इनमें से ज़्यादातर ज़रूरत पड़ने पर पाला बदलकर एक बार फिर फ़ासिस्टों की पालकी का कहार बन सकती हैं।

पूँजीपति वर्ग की सबसे पुरानी पार्टी कांग्रेस जनता के असन्तोष को भुनाने के लिए लोकलुभावन वादों-योजनाओं की नयी पोटली लेकर काफ़ी जोश से मैदान में उतरी है लेकिन अकेले दम पर उसका सत्ता में आना मुश्किल ही है। हालाँकि अगर ये सत्ता में आ भी गये तो पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के भीषण संकट के इस दौर में अपने वादों को पूरा करना उनके लिए भी मुमकिन नहीं होगा और जनता का असन्तोष और भी प्रबल रूप में फूटेगा जिसका फ़ायदा उठाने के लिए संघी अब 2014 के पहले के मुक़ाबले ज़्यादा तैयार होंगे।

ऐसे में मेहनतकश अवाम के सामने क्या विकल्प है? क्या हम इस बार भी लुटेरों के इस या उस गिरोह में से किसी को चुनेंगे? क्या हम इस बार भी बड़ी बुराई से निजात पाने के लिए छोटी बुराई को चुनेंगे जो कुछ समय बाद फिर बड़ी बुराई की वापसी के हालात पैदा कर देगी? या हम मेहनतकशों के लिए एक नया विकल्प खड़ा करने की राह पर आगे बढ़ेंगे!

अब विकल्प मौजूद है! (भाग-2)

चुनावों में रणकौशलात्मक हस्तक्षेप की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट कार्यदिशा क्या है?

सम्पादक मण्डल

पिछले अंक में हमने 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' (RWPI) के गठन, उसके लक्ष्य और स्वरूप की बात करते हुए स्पष्ट किया था कि ऐसी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी की ज़रूरत लम्बे समय से थी, जो कि दुस्साहसवाद, क्रान्तिकारी आतंकवाद और ''वामपंथी" कार्यदिशा को न लागू करके एक क्रान्तिकारी जनदिशा को लागू करती हो; जो कि पूँजीवादी चुनावों में मज़दूर वर्ग की ओर से रणकौशलात्मक भागीदारी की अनिवार्यता को समझती हो और इस लेनिनवादी कार्यदिशा से परिचित हो कि क्रान्तिकारी परिस्थिति के दौरों को छोड़कर, चुनावों के बहिष्कार के नारे की कोई प्रासंगिकता नहीं होती। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी एक ऐसी ही पार्टी है।

हमने पिछले अंक में इस पार्टी के उद्देश्यों, इसकी ज़रूरत, इसके चुनाव घोषणापत्र के विषय में विस्तार से चर्चा की थी। इस सम्पादकीय अग्रलेख की इस आख़िरी किश्त में हम इस बात पर चर्चा करेंगे कि चुनावों में कम्युनिस्टों की ओर से रणकौशलात्मक भागीदारी के विषय में क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट शिक्षकों, जैसे कि मार्क्स, एँ गेल्स, लेनिन, माओ आदि की क्या शिक्षा है। भारत में अपने आपको मार्क्सवादी-लेनिनवादी कहने वाले अधिकांश क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट संगठन आम तौर पर बहिष्कारवाद की ग़लत कार्यदिशा को अपनाते हैं, यह मानते हैं कि आज के दौर में हर सूरत में पूँजीवादी चुनावों का बहिष्कार ही किया जाना चाहिए। उनकी इस ग़लती के पीछे भारत की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति की उनकी ग़लत समझदारी की प्रमुख भूमिका है। इन संगठनों/पार्टियों का यह मानना है कि भारत आज एक अर्द्धसामन्ती अर्द्धऔपनिवेशिक या नवऔपनिवेशिक देश है। कोई भी व्यक्ति जो समझता है कि अर्द्धसामन्ती अर्द्धऔपनिवेशिक सामाजिक संरचना से माओ का क्या अर्थ था या 'नवऔपनिवेशिक संरचना' से लेनिन और फिर माओ का क्या अर्थ था, वह समझ सकता है कि इन क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट संगठनों ने भारत के उत्पादन के सामाजिक सम्बन्धों और भारत के पूँजीपति वर्ग के एक रचनात्मक मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्लेषण की कभी ज़हमत ही नहीं उठायी। उन्होंने केवल 1963 में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों के मूल्यांकन पर पेश आम दिशा को अपना ब्रह्मवाक्य बना लिया है, हालाँकि उसमें भी चीन की पार्टी ने स्पष्ट किया था कि हर देश के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को अपने देश की ठोस परिस्थितियों का विश्लेषण स्वयं ही करना होगा और देखना होगा कि वहाँ क्या परिस्थितियाँ मौजूद हैं। लेकिन लकीर की फकीरी करना भारत के क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन की पुरानी समस्या रही है। यही कारण है कि आज भी तमाम मार्क्सवादी-लेनिनवादी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट संगठन मौजूदा राजनीतिक,

(पेज 8 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

कुम्भ ख़त्म होने के साथ ही बस्तियाँ उजाड़ने का सिलसिला फिर शुरू

इलाहाबाद शहर के दक्षिणी हिस्से में यमुना के किनारे सुम्मन घाट बस्ती पड़ती है, जो करेला बाग़ वार्ड में आती है। 30 मार्च को नगर निगम व ज़िला प्रशासन ने बर्बरतापूर्ण तरीक़े से 40 झुग्गियों को उजाड़ दिया, जिसकी वजह से यहाँ रह रहे लगभग 250 लोग फ़ुटपाथ पर रहने को मजबूर हो गये हैं। ये लोग उजाड़ी गयी जगह के पास से गुज़रने वाली सड़क के दोनों ओर खुले आसमान के नीचे रह रहे हैं। रोज़ सुबह कूड़ा ढोनेवाली 20-21 गाड़ियाँ इस संकरे रास्ते से होकर गुज़रती हैं, जिसकी वजह से आये दिन झुग्गी के लोगों का कोई न कोई सामान गाड़ी के नीचे आने से टूट जाता है। इतना ही नहीं कुम्भ में इस्तेमाल मोबाइल टॉयलेट में भरी गन्दगी के कारण बदबू का साम्राज्य बन चुकी है यह जगह।

बर्बरता की हद पार करते हुए प्रशासन ने झुग्गी से सामान निकाल रहे बच्चों और महिलाओं को बेरहमी से पीटा भी। इतना ही नहीं झुग्गी में रखे सभी सामान जैसे कपड़े, राशनकार्ड, बर्तन, झुग्गी के बाहर रखे ठेले आदि को बुलडोजर चलाकर रौंद दिया। इस झुग्गी के ज़्यादातर लोग कूड़ा बीनने का और कुछ लोग लेबर चौक पर दिहाड़ी मज़दूरी का काम करते हैं। ग़ौरतलब है कि ये लोग पिछले 30 वर्षों से यहाँ रह रहे थे। अब इस बस्ती को इसलिए उजाड़ा गया, क्योंकि इस जगह पर शहर का कचरा और कुम्भ में इस्तेमाल किये गये मोबाइल टॉयलेट और कूड़ा ढोनेवाली गाड़ियाँ रखी जायेंगी।

31 मार्च को झुग्गी के लोग व कुछ अन्य आम नागरिक इस सम्बन्ध में ज़िलाधिकारी को ज्ञापन सौंपे थे, लेकिन अभी तक कोई कार्रवाई की सुगबुगाहट भी नहीं हुई है। पुलिस द्वारा बस्ती के लोगों के पीटे जाने के सम्बन्ध में एसपी को ज्ञापन दिया गया, लेकिन मेडिकल जाँच की खानापूर्ति करके ज़िला प्रशासन ने चुप्पी साध ली है।

2022 तक 20 करोड़ परिवारों को घर देने की बात करने वाली मोदी सरकार में केवल करेला बाग़ में ही नहीं बल्कि देश के तमाम शहरों में आये दिन झुग्गी-झोंपड़ियाँ उजाड़ी जा रही हैं। इलाहाबाद शहर को जब से स्मार्ट सिटी बनाने की शुरुआत हुई है, तब से सैकड़ों परिवारों को इसी तरह उजाड़कर बेघर किया जा चूका है। कुछ ही दिन पहले बख्शी बाँध के पास एक झुग्गी बस्ती उजाड़ी गयी, जिसमें 20 परिवारों के लगभग 100 से ज़्यादा लोग फ़ुटपाथ पर रहने को मजबूर हो गये।

'सबका साथ सबका विकास' का नारा चिल्लाने वाली भाजपा सरकार ने इसी इलाहाबाद शहर के सिविल लाइंस में अमीरों की गाड़ियाँ खड़ी करने के लिए चौड़े-चौड़े फ़ुटपाथों का निर्माण करवाया और यहाँ भी फ़ुटपाथ से उसी ग़रीब - रेहड़ी खोमचा, ठेला लगाने वाली आबादी को उजाड़ा गया। इस सम्बन्ध में झुग्गी के लोग इलाहाबाद की मेयर (जो ख़ुद भाजपा से है) को भी ज्ञापन सौंपा, जवाब में उसने सीधा कह दिया कि कहीं और जाकर रह लो।

वैसे तो पिछली सरकारों में भी ग़रीबों-मज़दूरों की झुग्गी-झोंपड़ियाँ उजाड़ी गयीं, लेकिन नरेन्द्र मोदी की सरकार में जिस फ़ासिस्ट तरीक़े से उजड़ने व विरोध करने पर पीटने की जो बर्बरता चल रही है, वह अन्य सभी सरकारों की बर्बरता को पीछे छोड़ चूकी है। 71 वर्षों की आज़ादी के बाद भी ज़िन्दगी की मूलभूत आवश्यकताएँ भी पूरी न होने वाली इस आबादी के लिए अब यह व्यवस्था नर्क बन चुकी है। वास्तव में पुलिस प्रशासन, कोर्ट-कचहरी तथाकथित जन प्रतिनिधि सभी मुट्ठीभर अमीरों की चाकरी करने के लिए हैं। इसलिए करोड़ों मेहनतकशों को संगठित होना होगा। अगर इलाहाबाद शहर और देश के अन्य शहरों के सभी झुग्गी-बस्ती के लोग एकजुट होकर अपना संगठन बनायें, तभी प्रशासन की बर्बरता का मुक़ाबला कर सकते है और गूँगे-बहरे जन प्रतिनिधियों को अपनी आवाज़ सुनाने के लिए मजबूर कर सकते हैं।

- अंगद

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के वॉलण्टियर बनें!

जो भी मज़दूर, आम मेहनतकश, छात्र, स्त्रियाँ व अन्य इंसाफ़पसन्द व तरक़्क़ीपसन्द नागरिक भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के कार्यक्रम से सहमत हैं, वे उसके वॉलण्टियर बन सकते हैं। लेकिन पार्टी की सदस्यता वही ग्रहण कर सकेंगे जो मार्क्सवाद-लेनिनवाद के उसूलों और विश्व दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं। पार्टी के वॉलण्टियर पार्टी के कार्यक्रम के प्रचार-प्रसार, आन्दोलनों, जनता के बीच सांगठनिक कार्यक्रमों आदि और उसके चुनावी प्रचार-प्रसार के कामों में पूरी तरह से हिस्सा लेंगे।

पार्टी के सम्मेलनों आदि में वे ही लोग भाग ले सकते हैं जिन्होंने न सिर्फ़ पार्टी के कार्यक्रम को स्वीकार किया है बल्कि पार्टी के सर्वहारा विश्व-दृष्टिकोण यानी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को भी स्वीकार किया है और पार्टी द्वारा उन्हें सदस्यता प्रदान की गयी है।

पार्टी के कार्यक्रम और चुनाव घोषणापत्र को आप इसकी वेबसाइट rwpi.org पर पढ़ सकते हैं या इसके कार्यालय से अथवा कार्यकर्ताओं से प्राप्त कर सकते हैं। वॉलण्टियर बनने के लिए पार्टी से फ़ोन, व्हॉट्सऐप या ईमेल से सम्पर्क करें या पार्टी कार्यकर्ताओं से बात करें। (सम्पर्क सूत्र 'मज़दूर बिगुल' के इसी अंक में पेज 5 पर देखें)

''बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।'' – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

पूँजीपतियों के पास दर्जनों अख़बार और टीवी चैनल हैं।
मज़दूरों के पास है उनकी आवाज़ 'मज़दूर बिगुल'!
इसे हर मज़दूर के पास पहुँचाने में हमारा साथ दें।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:
डाक से भेजने का पता: **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**
ईमेल से भेजने का पता: **bigulakhbar@gmail.com**

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर ''कम्युनिस्टों'' और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ
सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये
मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853093555, 9936650658
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 5/- रुपये वार्षिक – 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का चुनाव प्रचार अभियान

लुटेरों के इस या उस गिरोह को चुनने की मजबूरी छोड़ो! मेहनतकश का अपना क्रान्तिकारी विकल्प खड़ा करो!

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) सात लोकसभा सीटों से अपने उम्मीदवार खड़े कर रही है : उत्तर-पूर्वी दिल्ली से कॉमरेड योगेश, उत्तर-पश्चिमी दिल्ली से कॉमरेड अदिति, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) से कॉमरेड रमेश, रोहतक (हरियाणा) से कॉमरेड इन्द्रजीत, सन्तकबीर नगर (उत्तर प्रदेश) से कॉमरेड मित्रसेन, उत्तर-पूर्वी मुम्बई (महाराष्ट्र) से कॉमरेड बबन ठोके और अहमदनगर (महाराष्ट्र) से कॉमरेड सन्दीप सकत।

सभी इलाक़ों में पार्टी ने विभिन्न माध्यमों से अपना चुनाव प्रचार शुरू कर दिया है। पिछली 4 अप्रैल को दिल्ली में एक प्रेस कांफ्रेंस करके पार्टी ने अपना चुनाव घोषणापत्र भी जारी किया जिसमें वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य का मज़दूर वर्ग के दृष्टिकोण से विश्लेषण प्रस्तुत करने के साथ ही 84 सूत्री एजेंडा में मज़दूरों-मेहनतकशों से जुड़े मुद्दों को उठाया गया है।

पार्टी के चुनाव प्रचार के दौरान होने वाली सभाओं में कहा जा रहा है कि मोदी सरकार ने पाँच साल में केवल देशी-विदेशी सेठों की सेवा की है और जनता से किये उसके सारे वादे झूठे साबित हुए हैं। ऐसे में वह पुलवामा हमले, सर्जिकल स्ट्राइक आदि की बातें उठाकर राष्ट्रवादी भावनाओं को भुनाने का पूरा प्रयास कर रही है और साथ ही प्रधानमंत्री मोदी सहित तमाम भाजपा नेताओं ने हिन्दू-मुस्लिम का राग अलापना शुरू कर दिया है। लेकिन जनता इतनी मूर्ख नहीं है कि भाजपा के झाँसे में आ जाये। काठ की हाण्डी बार-बार नहीं चढ़ती। भाजपा जैसी फ़ासिस्ट पार्टी जनता की सबसे बड़ी दुश्मन है और इसे हराने के लिए लोगों को एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा देना चाहिए। लेकिन इसके साथ ही हमें कांग्रेस के लोकलुभावन नारों के झाँसे में भी नहीं आना चाहिए। आज यह पार्टी ग़रीबों को 'न्याय' देने की बात कर रही है लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि इसी पार्टी की नीतियों के कारण देश में ग़रीबों और भूखों की इतनी बड़ी संख्या पैदा हुई है। अब वक़्त आ गया है कि मेहनतकश अवाम एक लुटेरे गिरोह की जगह दूसरे लुटेरे गिरोह को चुनने की मजबूरी से बाहर आये और अपना क्रान्तिकारी विकल्प खड़ा करे।

पार्टी के चुनाव प्रचार में इस बात पर बल दिया जा रहा है कि मौजूदा तमाम चुनावी दल बड़े पूँजीपति घरानों व उनके चुनावी ट्रस्टों से करोड़ों रुपये चन्दा लेते हैं, उनके तमाम नेता ख़ुद शहरी या ग्रामीण पूँजीपति वर्ग का हिस्सा हैं। इसीलिए, वे सत्ता में आकर सेवा भी उसी धन्नासेठ वर्ग की करते हैं। जनता की आवाज़ लोकतन्त्र के तथाकथित मंचों से नदारद है। इसलिए आज यह बेहद ज़रूरी है कि मेहनतकश जनता के सच्चे नुमाइन्दे संसद और विधायिकाओं तक पहुँचे और एक ऐसे समाज के लिए संघर्ष को एक नये मुकाम तक पहुँचायें जिसमें उत्पादन, राज-काज और समाज के पूरे ढाँचे पर मेहनतकश वर्गों का अधिकार हो और फ़ैसले की वास्तविक ताक़त उन्हीं के हाथों में हो।

सातों चुनाव क्षेत्रों में मज़दूर पार्टी के वॉलण्टियर विभिन्न माध्यमों से जनता के बीच अपनी बातें पहुँचा रहे हैं। शहरी इलाक़ों में औद्योगिक मज़दूरों, घरेलू कामगारों, आंगनबाड़ी कर्मियों, छात्रों-नौजवानों आदि के बीच छोटी-बड़ी मीटिंगों के ज़रिए पार्टी के कार्यक्रम के बारे में लोगों को बताया जा रहा है और पार्टी के चुनाव घोषणापत्र को पढ़कर उस बात की जा रही है। इसके अलावा विभिन्न मीटिंगों में "गोदी मीडिया" के बहिष्कार का भी आह्वान किया जा रहा है। साथ ही घर-घर जाकर पर्चे बाँटते हुए लोगों से बात की जा रही है, नुक्कड़ सभाएँ और मंच लगाकर सभाएँ की जा रही हैं। कई जगहों पर साइकिल रैली, पैदल मार्च, बाइक रैली निकाल कर पार्टी का प्रचार किया जा रहा है। ग्रामीण इलाक़ों में गाँव-गाँव में मेहनतकश आबादी के साथ मीटिंगें और चौपाल सभाएँ आयोजित की जा रही हैं और घर-घर सम्पर्क किया जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी पैदल मार्च, साइकिल रैली और बाइक रैली के ज़रिए पार्टी का प्रचार जारी है। इसके अलावा, पार्टी की माँगों पर हस्तलिखित पोस्टर बनाकर लगाये जा रहे हैं। कुछ जगहों पर पूँजीवादी राजनीति का भण्डाफोड़ करते हुए और मज़दूर वर्गीय राजनीति के बारे में लोगों को जागरूक करने वाले पोस्टरों की प्रदर्शनी भी लोगों का ध्यान खींच रही है। क्रान्तिकारी गीतों और नुक्कड़ नाटकों के ज़रिए भी पूँजीवादी राजनीति का भण्डाफोड़ और क्रान्तिकारी राजनीति का प्रचार लोगों को आकर्षित कर रहा है। इसके साथ ही सोशल मीडिया के ज़रिए भी व्यापक आबादी तक पार्टी के कार्यक्रम को पहुँचाने की मुहिम छेड़ी गयी है।

वर्तमान व्यवस्था में निर्वाचन क्षेत्रों का आकार इतना बड़ा रखा जाता है कि कुछ दिनों में क्षेत्र की पूरी आबादी तक अपनी बात पहुँचाना नामुमकिन सा होता है। यह स्थिति बड़ी पूँजीवादी पार्टियों के हित में होती है जो करोड़ों रुपये पानी की तरह बहाती हैं। समाचार माध्यमों पर भी उन्हीं का क़ब्ज़ा होता है। इसीलिए मज़दूर पार्टी (RWPI) ने यह भी माँग उठायी है कि चुनावों में पैसे की ताक़त को पूरी तरह से ख़त्म करने के लिए छोटे निर्वाचन मण्डल गठित किये जाने चाहिए, समानुपातिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था लागू की जानी चाहिए और चुनाव में खड़ा होने के लिए हर प्रकार की वित्तीय या सम्पत्ति-सम्बन्धी पूर्व शर्त को तत्काल समाप्त किया जाना चाहिए।

मज़दूर पार्टी पूँजीपति वर्ग के किसी भी हिस्से से किसी भी तरह का फ़ण्ड नहीं लेती और अपने संसाधनों के लिए पूरी तरह मेहनतकश जनता और प्रगतिशील-इंसाफ़पसन्द नागरिकों से जुटाये सहयोग पर निर्भर करती है। ऐसे में, 24-25 लाख आबादी वाले लोकसभा क्षेत्रों की बड़ी आबादी तक अपनी बात पहुँचाने के लिए अभी संसाधनों की कमी एक बड़ी बाधा बन रही है, लेकिन पार्टी के वॉलण्टियर अपने उत्साह और दिनो-रात की कड़ी मेहनत से इस कमी को पूरा करने में जुटे हुए हैं। चुनाव प्रचार के दौरान लोगों से आर्थिक सहयोग भी जुटाया जा रहा है।

प्रचार के दौरान बाँटे जा रहे पर्चों, सभाओं आदि में कहा जा रहा है कि आज देश भर में ऐसी कोई स्वतन्त्र ताक़त मौजूद नहीं है जो मज़दूर वर्ग और मेहनतकशों के हितों की नुमाइन्दगी कर सके। मौजूदा सभी चुनावबाज़ पार्टियाँ बात तो आम जनता की करती हैं लेकिन असल मायने में पूँजीपति वर्ग की ही सेवा करती हैं। तमाम चुनावबाज़ पार्टियाँ पूँजीपति घरानों के संसाधनों पर चलती हैं तो ज़ाहिर है कि पिछले 70 सालों में इन्होंने सेवा भी इन्हीं की की है। मौजूदा भाजपा सरकार के शासन में बेरोज़गारी ने पिछले 5 दशकों का रिकॉर्ड तोड़ दिया है। देश में बेरोज़गारी दर फरवरी 2019 में 7.2 प्रतिशत पहुँच गयी जबकि देश में सरकारी पदों में ही 24 लाख सीटें खाली पड़ी हैं। भाजपा शासन में करीब पाँच करोड़ रोज़गार कम हो गये हैं। ठेका प्रथा ने 94 फीसदी मज़दूर आबादी की कमर तोड़ दी है और मज़दूर हकों पर लगातार हमले किये जा रहे हैं। श्रम क़ानूनों पर हमले करके मज़दूर संघर्षों को कमज़ोर किया जा रहा है। देश के 86 प्रतिशत किसान गरीब हैं, जिनके पास 5 एकड़ से कम ज़मीन है। सूदखोरों के बोझ तले आत्महत्या करने वाले किसानों का बड़ा हिस्सा गरीब और निम्न मध्यम किसान का है जो किसी कर्ज़माफ़ी के दायरे में आते ही नहीं हैं। जाति और सम्प्रदाय के नाम पर होने वाले दंगों और हिंसा में अभूतपूर्व बढ़ोतरी हुई है। स्त्री विरोधी अपराध में भारत दुनियाभर में अव्वल नम्बर पर पहुँच गया है।

प्रचार में इस बात पर बल दिया जा रहा है कि RWPI का मक़सद सिर्फ चुनाव लड़ना नहीं है। मज़दूर पार्टी का अन्तिम लक्ष्य क्रान्तिकारी तरीके से व्यवस्था परिवर्तन करना है। चुनाव में भागीदारी मेहनतकश आबादी के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष को मज़बूत करने और मेहनतकश वर्गों के हितों की पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर अधिकतम हिफाज़त करने का साधन है। मौजूदा व्यवस्था श्रम की लूट पर टिकी हुई मुनाफ़ा केन्द्रित व्यवस्था है जहाँ उत्पादन और वितरण समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के मक़सद से नहीं बल्कि मुनाफ़े के लिये होते हैं।

पार्टी के वॉलण्टियर लोगों को बता रहे हैं कि RWPI का उम्मीदवार अपने लोकसभा क्षेत्र में श्रम क़ानूनों, जैसे कि न्यूनतम वेतन, काम के घण्टे, साप्ताहिक छुट्टी, डबल रेट से ओवरटाइम, ईएसआई और पीएफ़ को सख्ती से लागू करवाने के लिये ज़रूरी कदम उठाएगा। मज़दूरों और मेहनतकशों की बस्तियों में बुनियादी सुविधाओं, सामुदायिक केन्द्र, अस्पताल और और स्कूलों की व्यवस्था को बेहतर बनाने के लिये संघर्ष करेगा। मज़दूर पार्टी का सांसद केवल एक कुशल मज़दूर जितना वेतन लेगा और बाकी वेतन को विकास निधि में डालेगा। समूची सांसद निधि सहित सभी योजनाओं को पारदर्शी तरीके से लागू करने के लिये उनका सार्वजनिक ऑडिट कराया जायेगा।

मज़दूर पार्टी की सबसे पहली माँग ठेका प्रथा के खात्मे की माँग है। दूसरा, इसके प्रतिनिधि जीतने पर 'भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी क़ानून' को व्यक्तिगत बिल के रूप में पेश करेंगे और उसके पक्ष में न सिर्फ संसद में बल्कि सड़क पर भी संघर्ष करेंगे। तीसरा, यह न्यूनतम मज़दूरी बढ़ा कर 20,000 रुपये किये जाने और 6 घण्टे का कार्यदिवस करने की माँग उठायेगी। तमाम ऋणग्रस्त व ऋण गबन करने वाली कम्पनियों के राष्ट्रीकरण की माँग उठायी जायेगी और अप्रत्यक्ष करों को समाप्त कर सम्पत्ति पर प्रगतिशील टैक्स लगाये जाने के लिये पार्टी संघर्ष करेगी। मज़दूर पार्टी का मानना है कि ज़मीन किसी की निजी सम्पत्ति नहीं हो सकती। इसलिए ज़मीन का राष्ट्रीकरण कर सभी बड़े निजी फ़ार्मों पर सामूहिक व सरकारी फ़ार्म बनाकर खेतिहर मज़दूरों और ग़रीब किसानों के बीच इसके बँटवारे के लिए पार्टी

(पेज 5 पर जारी)

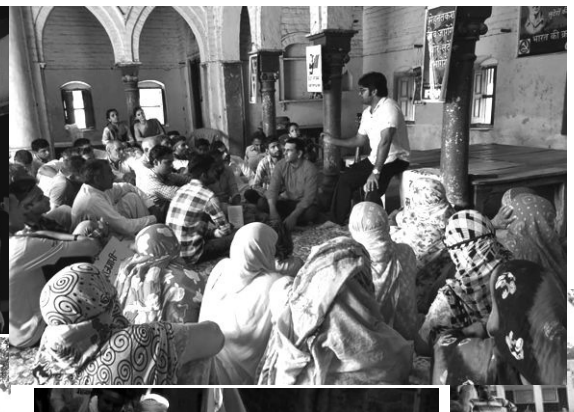

जलियाँवाला बाग़ क़त्लेआम के 100 वर्ष

मज़दूर-नौजवान-छात्र संगठनों द्वारा कन्वेंशन

शहीदों को दी भावभीनी श्रद्धांजलि, साम्राज्यवाद-पूँजीवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष तेज़ करने का संकल्प लिया

13 अप्रैल को जलियाँवाला बाग़ क़त्लेआम की 100वीं बरसी पर पंजाबी भवन, लुधियाना में मज़दूरों, नौजवानों, छात्रों के पाँच संगठनों – नौजवान भारत सभा, कारख़ाना मज़दूर यूनियन, पंजाब स्टूडेण्ट्स यूनियन (ललकार), टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, पेंडू मज़दूर यूनियन (मशाल) – द्वारा कन्वेंशन की गयी। पंजाब के विभिन्न हिस्सों से लुधियाना पहुँचे सैकड़ों लोगों ने शहीदों की याद में दो मिनट का मौन रख कर और क्रान्तिकारी नारे बुलन्द करके कन्वेंशन की शुरुआत की। इसके बाद क्रान्तिकारी सांस्कृतिक मंच दस्तक ने क्रान्तिकारी गीत पेश किये। कन्वेंशन में वक्ताओं ने कहा कि जलियाँवाला बाग़ क़त्लेआम के शहीदों की क़ुर्बानियाँ लूट-दमन के ख़िलाफ़ जूझ रहे लोगों के लिए आज भी प्रेरणा स्रोत हैं और 13 अप्रैल 1919 के शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि सिर्फ़ यही हो सकती है कि साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के ख़िलाफ़ जद्दोजहद तेज़ की जाये।

कन्वेंशन को प्रतिबद्ध मैगजीन के सम्पादक सुखविन्दर, नौजवान भारत सभा के नेता मानव, पेंडू मज़दूर यूनियन (मशाल) के नेता सुखमिन्दर सिंह हंबड़ां, टेक्सटाइल हौज़री कामगार यूनियन के नेता राजविन्दर, पंजाब स्टूडेण्ट्स यूनियन (ललकार) के नेता गुरप्रीत व सुरिन्दर कुमारी कोछड़ ने सम्बोधित किया। मंच संचालन कारख़ाना मज़दूर यूनियन के नेता लखविन्दर ने किया।

वक्ताओं ने कहा कि जलियाँवाला बाग़ क़त्लेआम अंग्रेज़ी हुकूमत द्वारा भारत की जनता पर किये जा रहे बर्बर जुल्मों की एक प्रतिनिधि घटना थी। इस क़त्लेआम में 1800 से अधिक लोग मारे गए थे, इतने ही जख्मी हुए थे, बड़ी संख्या में अपाहिज हुए थे। इस क़त्लेआम ने पूरे देश की जनता को झिंझोड़ दिया था और बर्बर अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ भारत की जनता के संघर्ष को और भी तेज़ कर दिया था। अंग्रेज़ राज के ख़ात्मे के बाद आये शोषणकारी राज ने भी मेहनतकश जनता के लूट-दमन में कोई क़सर बाक़ी नहीं छोड़ी। अधिकारों के लिए संघर्षरत जनता का दमन करने में काले अंग्रेज़ों ने गोरे अंग्रेज़ों को भी मात दी है। टाडा, पोटा, आफ्सपा, तथाकथित नुक़सान रोकथाम क़ानून जैसे दमनकारी काले क़ानून, आपातकाल आदि इन्होंने जनता पर थोपे हैं। इनके हथियारबन्द दस्तों ने असंख्य ख़ूनी काण्डों में बेगुनाह जनता का ख़ून बहाया है। लेकिन जनता कभी भी दमन के आगे झुककर चुप करके नहीं बैठी। जनता इस लूट-दमन का जवाब जद्दोजहद और तेज़ करके देती आयी है। वक्ताओं ने कहा कि मौजूदा फ़ासीवादी उभार के समय सत्ता का दमन और भी तीखा हो गया है। जनवादी अधिकारों का पहले किसी भी समय से अधिक भयानक रूप में हनन किया जा रहा है।

वक्ताओं ने कहा कि साम्राज्यवाद आज भी भारत की जनता का दुश्मन है। भारत की मेहनतकश जनता साम्राज्यवाद व इसके जूनियर पार्टनर भारतीय पूँजीवाद के नापाक गँठजोड़ द्वारा लूटी-दबायी जा रही है। उन्होंने कहा कि जलियाँवाला बाग़ के शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि साम्राज्यवाद-पूँजीवाद लूट-दमन के ख़िलाफ़ जद्दोजहद तीखा करना ही हो सकती है। वक्ताओं ने कन्वेंशन में पहुँचे कार्यकर्ताओं व अन्य लोगों का इस जद्दोजहद को आगे बढ़ाने के लिए पुरज़ोर कोशिशें करने का आह्वान किया। कन्वेंशन के बाद पंजाबी भवन से भारत नगर चौक तक पैदल मार्च निकाला गया।

क्या आप जानते हैं?

मौजूदा संसद में करीब 83 प्रतिशत सांसद करोड़पति हैं! यानी कि वे खुद बड़े मालिक, पूँजीपति, ठेकेदार या दलाल हैं, जो कि मज़दूरों से लूटी गयी अपनी दौलत के बूते संसद में पहुँचे हैं? क्या आप इतने नादान हैं कि आपको लगता है कि ये सांसद आपकी नुमाइन्दगी करेंगे? क्या आपको लगता है कि ये आपके हितों की सेवा करेंगे? आपके पक्ष में क़ानून बनायेंगे? ज़रा सोचिये! केवल और केवल जनता के बल पर और जनता से जुटाये धन पर खड़ी पार्टी ही यह काम कर सकती है।

क्या आप जानते हैं?

मौजूदा संसद में 33 प्रतिशत से भी ज़्यादा सांसदों पर हत्या, बलात्कार, अपहरण, दंगा करवाने, तस्करी, भ्रष्टाचार जैसे गम्भीर अपराधें के मुक़दमे चल रहे हैं। यहाँ तक कि मोदी सरकार के मन्त्रियों तक पर हत्या व बलात्कार के मुक़दमे चल रहे हैं। इनमें से सबसे ज़्यादा आरोपी सांसद अपने चाल-चेहरा-चरित्र और भारतीय संस्कृति की दुहाई देने वाली धर्मध्वजाधारी भारतीय जनता पार्टी के हैं। कांग्रेस व अन्य पूँजीवादी पार्टियों की स्थिति भी इससे बेहतर नहीं है। क्या आपको लगता है कि अपराधियों का जमघट बन चुकी ये पार्टियाँ संसद में आपकी नुमाइन्दगी करेंगी? आपके हितों की सुरक्षा करेंगी? देश में शान्ति और सुरक्षा के हालात बनायेंगी? अपराधियों को सज़ा दिलवायेंगी? यह असम्भव है!

जलियाँवाला बाग़ की क्रान्तिकारी विरासत ज़िन्दाबाद!

जलियाँवाला बाग़ हत्याकाण्ड की सौंवी बरसी पर नौजवान भारत सभा और दिशा छात्र संगठन की ओर से गोरखपुर के बिछिया में पैदल मार्च निकालते हुए नुक्कड़ सभाओं का आयोजन किया गया। सभा में बात रखते हुए नौभास के कार्यकर्ताओं ने कहा कि जलियाँवाला बाग़ हत्याकाण्ड को याद करते समय यह भी नहीं भूलना चाहिए कि मौजूदा लुटेरी पूँजीवादी व्यवस्था देशी और विदेशी लुटेरों की साझा लूट को क़ायम रखने के लिए आज भी ऐसे बर्बर और जघन्य हत्याकाण्डों को अंजाम दे रही है। पिछले दिनों मारुति-सुज़ुकी के मज़दूरों पर गुड़गाँव में और तूतीकोरिन में वेदान्ता समूह को बेरोकटोक लूट की छूट देने के लिए स्नाइपर्स लगाकर लोगों पर गोलियाँ चलवायी गयीं। जो कि इस व्यवस्था द्वारा रोज़ अंजाम दिये जाने वाले बर्बर हत्याकाण्डों के चन्द उदाहरण भर हैं। ऐसे में आज के समय में लड़ाई देशी और विदेशी, दोनों तरह की लूट के ख़िलाफ़ है। नौभास के कार्यकर्ताओं ने लोगों का आह्वान किया कि इस व्यवस्था को उखाड़कर नये समाज के निर्माण की लड़ाई के लिए आगे आयें।

जनता द्वारा दिये अपने नाम – केचुआ – को सार्थक करता केन्द्रीय चुनाव आयोग

– विकास कुमार

भारत के इतिहास में कभी भी चुनाव आयोग की ऐसी गयी-बीती हालत नहीं रही है। यह स्वाभाविक भी है। फ़ासीवाद की ख़ासियतों में से एक यह भी है कि यह पूँजीवादी जनवाद की तमाम "सम्मानित संस्थाओं" को अन्दर से खोखला बना देता है। पहले भी भारत में इन संस्थाओं की हालत ख़राब ही थी। लेकिन इज़्ज़त बचाने के लिए ये संस्थाएँ कुछ क़दम उठाया करती थीं। लेकिन अब आप चाहे चुनाव आयोग पर निगाह डालें या फिर न्यायपालिका पर, ये मानो आज की फ़ासीवादी शासक पार्टी भाजपा और नरेन्द्र मोदी के इशारों पर काम कर रही हैं। अक्सर तो ऐसा लगता है कि केन्द्रीय चुनाव आयोग भाजपा का ही कोई मोर्चा है।

भाजपा के नेता खुले तौर पर चुनावी रैलियों में भारतीय सेना को 'मोदी की सेना' बता रहे हैं, लेकिन चुनाव आयोग शर्माते-शर्माते बस 'चेतावनी' देकर रह जा रहा है। प्रधानमन्त्री सैटेलाइट को नष्ट करने वाली एक मिसाइल के परीक्षण के ऐलान के बूते चुनाव प्रचार कर रहे हैं, लेकिन उसमें चुनाव आयोग को कुछ भी आपत्तिजनक नहीं दिख रहा। बालाकोट हमले के बारे में झूठी बातें बोलकर उसका चुनाव प्रचार में इस्तेमाल खुले तौर पर हो रहा है, लेकिन चुनाव आयोग अन्धा बना हुआ है! 'नमो टीवी' नामक एक चैनल मोदी के महिमामण्डन के लिए अचानक रहस्यमय तरीक़े से प्रकट हुआ, लेकिन चुनाव आयोग ने उस पर कोई क़दम नहीं उठाया, वह भी तब जब कि इस चैनल के लिए न तो कोई पंजीकरण हुआ था और न ही कोई अनुमति ली गयी थी! नरेन्द्र मोदी ने टीवी पर साफ़ झूठ बोला कि उनको इस नमो चैनल की कोई जानकारी नहीं है, जबकि उनके ट्विटर अकाउण्ट से रोज़ इस चैनल का प्रचार किया जा रहा था। बाद में भाजपा ने बेशर्मी से स्वीकार किया कि उसका आईटी सेल ही इस चैनल को चला रहा था जिसका एकमात्र काम था मोदी के भाषणों और रैलियों को दिखाना। नरेन्द्र मोदी के जीवन पर बनी फ़िल्म का धड़ल्ले से प्रचार हो रहा था और उन पर एक वेब सीरीज़ का प्रसारण भी किया जा रहा था। काफ़ी हंगामे और अनेक वरिष्ठ रिटायर्ड अफ़सरों के एक खुले पत्र के बाद मजबूरन 'केचुआ' को नमो टीवी और मोदी फ़िल्म पर रोक लगाने का आदेश देना पड़ा। हालाँकि कई जगहों से लोगों का कहना है कि क़ानूनी रोक के बावजूद नमो टीवी दिखाया जा रहा है। वेब सीरीज़ का प्रसारण अब भी जारी है। सारे क़ानूनों और नियमों को ताक पर रखकर हार के डर से परेशान भाजपा और संघ परिवार चुनाव की आचार संहिता की खुलेआम धज्जियाँ उड़ा रहे हैं, लेकिन चुनाव आयोग शान्त है। ऐसे में, इस संस्था की तथाकथित निष्पक्षता की सच्चाई जनता के सामने आ गयी है।

मोदी, अमित शाह और योगी सहित भाजपा के अनेक नेता झूठे, साम्प्रदायिक और अपमानजनक बयान धड़ल्ले से देते रहे, लेकिन चुनाव आयोग के कान पर जूँ नहीं रेंगी। फिर मायावती और आज़म खाँ ने भी जब ऐसी बयानबाज़ियाँ कीं और सुप्रीम कोर्ट ने इस पर सख़्ती दिखायी, तब केचुआ जी ने योगी, मेनका गाँधी, आज़म खाँ और मायावती के चुनाव प्रचार करने पर तीन दिन की रोक लगायी। ये अलग बात है कि मोदी के खुलेआम सेना के नाम पर वोट माँगने और हिन्दू-मुस्लिम करने के बावजूद केचुआ की उस पर कुछ बोलने की हिम्मत नहीं हो रही है।

उच्चतम न्यायालय ने पूछा कि सभी इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों के साथ वीवीपैट की व्यवस्था करके चुनावों में पारदर्शिता सुनिश्चित क्यों नहीं की जा सकती है? तो इस पर जवाब देने के बजाय चुनाव आयोग उच्चतम न्यायालय से पूछता है कि क्या उसे ईवीएम पर भरोसा नहीं है! यह कैसा जवाब है? चुनाव आयोग सभी ईवीएम मशीनों के साथ चुनावों में वीवीपैट की व्यवस्था करने से क्यों घबरा रहा है? क्या इसके पीछे कोई साज़िश तो नहीं? इस सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता है। जब हालिया विधानसभा चुनावों में ही ईवीएम मशीनें सड़क पर पड़ी मिल रही थीं, भाजपा नेताओं के घर से बरामद हो रही थीं, जहाँ ईवीएम मशीनें रखी गयी थीं, वहाँ अचानक लाइट चली जा रही थी और सीसीटीवी कैमरे बन्द हो जा रहे थे, तो क्या यह शक लाज़िमी नहीं है कि भाजपा सरकार ईवीएम घोटाला करने पर आमादा है?

यह ख़बर लिखे जाने तक इस चुनाव में पहले चरण का मतदान ही हुआ था और एक ही दिन में देश भर से ईवीएम मशीनों में ख़राबी की ख़बरें पूरे देश से आ गयीं। सहारनपुर में ही क़रीब 56 मशीनें ख़राब होने की शिकायत के बाद उन्हें बदला गया। चुनाव आयोग के अनुसार ही क़रीब साढ़े तीन सौ से ज़्यादा ख़राब मशीनों की ख़बरें आयीं। आन्ध्र प्रदेश के मुख्यमन्त्री चन्द्रबाबू नायडू ने तो कहा कि 30 प्रतिशत ईवीएम सही काम नहीं कर रही हैं। पहले चरण के मतदान में ही साफ़ हो गया कि इन ईवीएम मशीनों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। दिलचस्प बात यह है कि हर चुनाव में हर राज्य में जो भी ईवीएम मशीनें गड़बड़ पायी गयी हैं, सबमें हमेशा एक ही तरह की ख़राबी आती है – बटन किसी भी पार्टी का दबाओ मगर वोट भाजपा को जाता है। पहले चरण के मतदान में एक वोटर ने तो बाक़ायदा वीडियो बनाकर फ़ेसबुक पर पोस्ट किया कि किसी अन्य पार्टी के आगे का बटन दबाने के बावजूद भाजपा को वोट जा रहा है। क्या अब भी सुप्रीम कोर्ट को स्वयं संज्ञान लेकर इस मुद्दे पर कार्रवाई नहीं करनी चाहिए? क्या चुनाव आयोग को पहले चरण के अनुभव के बाद स्वयं ही सभी ईवीएम के वीवीपैट वेरिफ़िकेशन की व्यवस्था नहीं करनी चाहिए? लेकिन कोई नहीं चाहता कि उसका हश्र भी जज लोया जैसा हो। मोदी सरकार के कार्यकाल में न्यायपालिका और चुनाव आयोग जैसी संस्थाओं का हाल दयनीय हो गया है। इनसे उम्मीद करना भी बेकार है कि वे कोई क़दम उठायेंगे। दूसरी पूँजीवादी पार्टियों में इतना भी दमखम नहीं बचा कि इस मुद्दे पर एकजुट होकर माँग उठायें कि ईवीएम को छोड़कर बैलट पेपर की व्यवस्था फिर अपनायी जाये। ईवीएम की व्यवस्था को दुनिया के अनेक उन्नत पूँजीवादी देश अपनाने के बाद छोड़ चुके हैं। भाजपा के दोगलेपन का आलम यह है कि जब ये सत्ता में नहीं थे तो ईवीएम का ज़ोर-शोर से विरोध करते थे। लालकृष्ण आडवाणी ने तो ईवीएम से होने वाले चुनाव घोटालों के उदाहरण देते हुए इसे ख़ारिज करने की माँग पर एक किताब ही लिख डाली थी।

मोदी सरकार इक्कीसवीं सदी के फ़ासीवाद की ख़ासियतों को ही दिखा रही है जिसमें पूँजीवादी लोकतन्त्र का बस खोल बना रह जाता है, पूँजीवादी जनवाद की सभी संस्थाओं और प्रक्रियाओं की आत्मा निकाल ली जाती है और उन्हें खोखला बना दिया जाता है। हिटलर की नात्सी पार्टी की तरह इक्कीसवीं सदी का फ़ासीवाद औपचारिक तौर पर पूँजीवादी लोकतन्त्र और उसके चुनावों व अन्य संस्थाओं को ख़त्म नहीं करेगा। लेकिन उन्हें ऐसी स्थिति में पहुँचा दिया जायेगा कि उनका रहना न रहना बराबर हो जायेगा। मोदी-शाह की जोड़ी यही काम कर रही है और इसका मुक़ाबला सिर्फ़ न्यायपालिका में नहीं बल्कि सड़क पर उतरकर भी करना होगा। जनता को चुनावों की प्रक्रिया में हो रही हेराफेरी के प्रति जागरूक बनाना होगा और उन्हें गोलबन्द और संगठित करना होगा।

इन सभी चिन्ताओं के विषय में चुनाव आयोग को कुछ नहीं कहना है। चुनाव की तारीख़ें तय करने से लेकर मोदी की सुविधानुसार बेहद लम्बा चुनाव कार्यक्रम तय करने तक, सबकुछ भाजपा के इशारे पर किया जा रहा है। याद कीजिए, 2017 में गुजरात चुनाव के समय तरह-तरह के बहानों से चुनाव तब तक टाले गये थे, जब तक कि मोदी ने ढेर सारी चुनावी घोषणाएँ नहीं कर डालीं और सरकारी ख़र्च पर प्रचार का पूरा फ़ायदा नहीं उठा लिया। ऐसे में, यह कहना ग़लत नहीं होगा कि चुनाव आयोग भाजपा के चुनाव विभाग के तौर पर काम कर रहा है। सोशल मीडिया पर जनता का दिया नाम – केचुआ – अब उस पर पूरी तरह लागू हो रहा है। ज़ाहिर है, फ़ासीवाद ने पूँजीवादी चुनावों की पूरी प्रक्रिया को ही बिगाड़कर रख दिया है।

आम मेहनतकश जनता को इस बारे में चौकस रहना चाहिए। चुनाव का पूँजीवादी जनवादी हक़ हमारे लिए ज़रूरी है। हम अपने मज़दूर वर्गीय दूरगामी राजनीतिक संघर्ष को पूँजीवादी जनवाद के रहते हुए तेज़ी से आगे बढ़ा सकते हैं और चुनने और चुने जाने का अधिकार पूँजीवादी जनवाद का सबसे बुनियादी अधिकार है। (हालाँकि मज़दूर वर्ग के लिए 'चुने जाने के अधिकार' में इतनी बाधाएँ खड़ी कर दी जाती हैं, कि वह आम तौर पर चुनाव में इस अधिकार का उपयोग ही नहीं कर पाता है।) इस अधिकार को पूर्ण बनाने के लिए भी संघर्ष किया जाना चाहिए और इसे बचाने के लिए भी। इसलिए अगर चोर दरवाज़े से इस अधिकार को फ़ासिस्ट मोदी सरकार नष्ट करने की कोशिश करती है, तो हमें ज़रूरत पड़ने पर सड़कों पर उतरकर इसके लिए संघर्ष करने के लिए भी तैयार रहना चाहिए।

RWPI का चुनाव प्रचार अभियान

(पेज 3 से आगे)

प्रयास करेगी। राफ़ेल घोटाला, फसल बीमा घोटाला, नोटबन्दी घोटाला समेत सभी घोटालों की उच्चस्तरीय न्यायिक जाँच की माँग उठायी जायेगी। प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा सरकार की ज़िम्मेदारी होनी चाहिए और इसके लिये RWPI प्रयत्नशील रहेगी। इसके साथ ही सभी के लिए नि:शुल्क स्वास्थ्य देखरेख और प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक सभी के लिए समान एवं नि:शुल्क शिक्षा पार्टी की एक अहम माँग है। सभी स्कीम वर्करों (आशा, आँगनवाड़ी व मिड-डे मील वर्कर) को कर्मचारी का दर्जा देने और घरेलू कामगारों तथा 'लेबर चौक' के मज़दूरों के रोज़गार, पंजीकरण व सामाजिक सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय क़ानून व विशेष एक्सचेंज के गठन की माँग की जायेगी।

अभी तक की परिपाटी यही रही है कि चुनाव में जीत चाहे जिस पार्टी की हो, जनता की तो हार ही होती है। जनता के सामने कोई सच्चा विकल्प मौजूद नहीं होता और वह विकल्पहीनता में कभी इस तो कभी उस लुटेरे गिरोह को चुनते रहने पर मजबूर होती है। RWPI इस परिपाटी को तोड़ने और बदलाव की एक नयी बयार लाने के लिए कटिबद्ध है। RWPI जनता की उम्मीदों पर पूरी तरह से खरी उतरेगी। यदि इसके उम्मीदवार जीतते हैं तो जनता के संघर्षों को एक नये मुकाम तक पहुँचायेंगे और जनता की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा कराने का इस व्यवस्था के भीतर हरसम्भव प्रयास करेंगे। लेकिन अगर वे यदि हारते हैं तो भी जनता के मुद्दों को बढ़-चढ़कर उठाते रहेंगे और मेहनतकशों के संघर्ष के झण्डे को हमेशा बुलन्द रखेंगे। इसी संकल्प के साथ मज़दूर पार्टी इस चुनाव में देश की सिर्फ़ सात सीटों पर हस्तक्षेप कर रही है लेकिन आने वाले समय में यह अपनी ताक़त का और विस्तार करेगी।

– मज़दूर बिगुल टीम

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) की सभी मेहनतकशों व मज़दूरों से अपील

– मज़दूर पार्टी (RWPI) को वोट दें!

– मज़दूर पार्टी के वॉलण्टियर बनें!

– अपने इलाक़े में मज़दूर पार्टी की बैठक करायें!

– मज़दूर पार्टी को अधिक से अधिक आर्थिक सहयोग करें!

सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली–110090
फ़ोन : (दिल्ली) 9599458044, 9873358124, 9289498250;
(हरियाणा) 8685030984, 9812764062, 9991908690;

(उत्तर प्रदेश) 8115491369, 9971196111; (पंजाब) 9888025102;
(महाराष्ट्र) 9892808704, 9156323976; (बिहार) 9939815231, 8873079266;
(उत्तराखण्ड) 9971158783; (केरल) 8078855342;
(आन्ध्र प्रदेश व तेलंगाना) 9971196111

व्हॉट्सऐप : 8737013347 ईमेल : contact.rwpi@gmail.com वेबसाइट : rwpi.org

गाँव-देहात की मेहनतकश आबादी के हालात और उनके लिए भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का एजेण्डा

जैसा कि हम जानते हैं, पूँजीवादी व्यवस्था में एक मज़दूर को सिर्फ़ इतना दिया जाता है जिससे वह मर-मर कर ज़िन्दा रह सके। लेकिन आज के पूँजीवादी समाज में बेरोज़गारी, बेकारी, भुखमरी, ग़रीबी के चलते एक मज़दूर को इतना भी नहीं मिल पाता कि वह उससे, ख़ुद को और अपने परिवार को ज़िन्दा रख सके। आज अगर हम ग्रामीण मज़दूरों के हालात पर एक नज़र दौड़ाएँ तो हम पाते हैं कि आज गाँव में रहने वाले मज़दूर ज़्यादातर खेतिहर मज़दूर, भट्ठा मज़दूर, मिस्त्री या दुकान व मण्डियों में काम करने वाले मज़दूर हैं। इस प्रकार का काम मज़दूर अपने गाँव या अपने आस-पास के गाँव-शहर में करते हैं। हम देख सकते हैं कि इस प्रकार का काम कोई स्थायी काम नहीं होता। ये सभी काम सीज़न या मौसम के हिसाब से होते हैं। इसलिए उनको अपना ज़्यादा समय घर पर ही बिताना पड़ता है। ऐसे में समझा जा सकता है कि गाँव में रहने वाली एक बहुत बड़ी मज़दूर आबादी को ग़रीबी, भुखमरी, बेकारी, बेरोज़गारी में ही अपनी ज़िन्दगी गुज़ारनी पड़ती है। लेकिन अगर हम मान भी लें कि इस प्रकार का काम मज़दूरों को मिल भी जाता है तो किन हालातों में उनको यह काम करने पर मजबूर होना पड़ता है, यह भी हमें जानने की कोशिश करनी चाहिए।

गाँव के ईंट-भट्ठा मज़दूरों की हालत

भट्ठा मज़दूरों की बात करें तो उन्हें बहुत बुरे हालात में काम करने पर मजबूर होना पड़ता है। वे हर दिन कम से कम दस या उससे ज़्यादा घण्टे काम करते हैं। मज़दूरों को यह काम ठेकेदारी प्रथा के तहत करना पड़ता है। भट्ठे के काम को करवाने के लिए भट्ठे का मालिक ही इसमें ठेकेदार की भूमिका निभाता है। यह काम भी कोई परमानेण्ट काम नहीं होता, क्योंकि पूरे साल के दौरान भट्ठा केवल छः महीने ही चलता है, बाक़ी के छः महीने वह बन्द रहता है। इसकी वजह से मज़दूरों को छः महीने अपने घर बैठना पड़ता है। काम के दौरान एक मज़दूर को उसकी सेफ़्टी के लिए जो ज़रूरी सामान दिया जाना चाहिए, वह भी उनको नहीं दिया जाता। इन हालात में काम करने के बाद भी मज़दूरों को न्यूनतम वेतन तक नहीं मिलता। बिना सेफ़्टी के काम करते मज़दूरों को जिन बीमारियों का सामना करना पड़ता है उन बीमारियों के इलाज का कोई भी पैसा मज़दूरों को नहीं मिलता। इससे पता चलता है कि भट्ठा मालिक द्वारा मज़दूरों पर एक भी श्रम क़ानून लागू नहीं किया जाता।

इन मज़दूरों का कहना है कि भयंकर बेरोज़गारी के कारण उन्हें इतने बुरे हालात में भी काम करना पड़ता है। अगर वे काम नहीं करेंगे तो उनके बच्चे और वे भूखे मर जायेंगे। इसलिए उनको काम करने पर मजबूर होना पड़ता है।

मनरेगा मज़दूरों की हालत

इसी प्रकार के मिलते-जुलते हालात दूसरे क्षेत्रों में काम करने वाले मज़दूरों के भी हैं। अगर हम मनरेगा की जाँच-पड़ताल करें तो देखते हैं कि मनरेगा क़ानून के अनुसार 100 दिन काम की योजना है, लेकिन असल में ना तो मज़दूरों को सौ दिन काम मिलता है और ना ही पूरी मेहनत का हिसाब मिलता है। क़ानून की किताबों में नये-नये क़ानून तो बनते हैं, किन्तु व्यवहार में कोई भी लागू नहीं होता। मेहनतकश वर्ग हर जगह शोषण का शिकार है। साथ ही 'डिजिटल इण्डिया' के नाम पर मज़दूरों की दिहाड़ी मोबाइलों में डाली जाती है। अब सवाल यह है कि मज़दूर अपना काम करेगा या फिर सिम कार्ड से अपने पैसे निकलवाने इधर-उधार भटकेगा। दूसरी बात यह कि मोदी सरकार के आने के बाद से मनरेगा में नये-नये बदलाव कर दिये गये हैं, जिनके बारे में मज़दूरों या उनकी यूनियन से बिना सलाह वेतन का भुगतान कार्यदिवस की जगह कार्य की पैमाइश के अनुसार किया जा रहा है। इस बदलाव से कई जगह ऐसा हुआ, जहाँ मज़दूरों ने 8 घण्टे काम किया, लेकिन पैमाइश के अनुसार उनको भुगतान 150 रुपये ही मिले, जबकि हरियाणा में मनरेगा मज़दूरी कार्यदिवस के अनुसार 281 रुपये है। वहीं अभी हाल की रिपोर्ट के अनुसार मोदी सरकार ने मनरेगा के तहत मज़दूरी में सिर्फ़ 2.16 फ़ीसदी की औसत बढ़ोत्तरी की है। छह राज्यों और केन्द्र-शासित प्रदेशों में मज़दूरी में कोई बढ़ोत्तरी नहीं की गयी है। 15 राज्यों में एक रुपये से लेकर पाँच रुपये की बढ़ोतरी की गयी है।

सरकारी दावों की बात करें तो मनरेगा क़ानून 2005 कहता है कि इसका मक़सद है ग्रामीण क्षेत्रों में छिपी बेरोज़गारी को कम करना। यानी क़ानून के तहत 1 वर्ष में परिवार के वयस्क सदस्यों को 100 दिन के रोज़गार की गारण्टी दी जायेगी। रोज़गार के पंजीकरण के 15 दिन के भीतर काम देने और काम ना देने की सूरत में बेरोज़गारी भत्ता देने की बात कही गयी है। मनरेगा के तहत न्यूनतम मज़दूरी भी अलग-अलग राज्यों के हिसाब से तय की गयी है। हरियाणा में अभी फ़िलहाल 281 रुपये तय की गयी है।

मनरेगा के बजट की रक़म भारी-भरकम होती है, जैसे 2017-18 में मनरेगा के लिए 48 हज़ार करोड़ दिये गये। लेकिन इसकी ज़्यादातर रक़म दूसरी योजनाओं में ख़र्च कर दी जाती है। वैसे भी पूरे देश में मनरेगा के तहत साल में सिर्फ़ 46 दिन औसत काम मिलता है। काग़ज़ों पर ज़रूर ये योजना ग्रामीण मज़दूरों के लिए कल्याणकारी लगती है, लेकिन असल मक़सद है गाँव से आबादी का पलायन रोकना। क्योंकि खेती में लगातार मशीनीकरण के कारण गाँव की ग़रीब आबादी में तेज़ी से बेरोज़गारी फैल रही है। ऐसे में कोई भी सरकार शहरी बेरोज़गारों की संख्या में इससे ज़्यादा बढ़ोत्तरी सहन नहीं कर सकती, क्योंकि वह शहरों में सामाजिक असन्तोष को बढ़ायेगा। इसलिए ऐसी योजना से सरकार चाहती है कि गाँव से आने वाले सम्भावित प्रवासियों को अर्द्धभुखमरी की हालत में, यानी सौ दिन के रोज़गार के साथ, अभी कुछ और समय तक गाँव में ही रोके रखा जाये। मनरेगा की योजना का बस यही मक़सद था।

गाँव के ग़रीब मज़दूरों व ग़रीब किसानों को क्या करना चाहिए?

ऐसे में गाँव-देहात की मज़दूर आबादी के बीच पूरे साल के पक्के रोज़गार के लिए संघर्ष की शुरुआत की जानी चाहिए। चुनाव के समय पूरे पूँजीपति वर्ग की सेवा करने वाली सभी चुनावबाज़ पार्टियाँ इन मज़दूरों के बीच वोट की भीख माँगने आती है और साथ में मज़दूरों से बड़े लम्बे-चौड़े वायदे करती है ताकि मज़दूरों का वोट अपने पक्ष में लिया जा सके। लेकिन असल में वह सत्ता में आने के बाद भूस्वामियों, धनी किसानों और पूँजीपतियों की नीतियों को आगे बढ़ाते हुए उन्हीं की सेवा करती है। चूँकि ये सभी पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियाँ जैसे कि भाजपा, कांग्रेस, इनेलो, सपा, बसपा बड़े, मँझोले और छोटे पूँजीपतियों, भूस्वामियों, आढ़तियों, ठेकेदारों व धनी किसानों के धनबल से चलती हैं, इसलिए वह गाँव के ग़रीब किसानों और मज़दूरों के लिए कुछ भी नहीं कर सकतीं। यही बात समझकर देश के मज़दूरों और ग़रीब किसानों ने अपनी नयी पार्टी बनायी है - 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' (RWPI)। यह पार्टी पूरी तरह मज़दूरों व ग़रीब किसानों के सहयोग व चन्दे से चलती है। इसका नेतृत्व मज़दूर व मेहनतकश के आन्दोलन से ही पैदा हुआ है। यही कारण है कि गाँव के ग़रीब किसानों और मज़दूरों के हक़ों के लिए केवल यही पार्टी लड़ सकती है। इसलिए आज मज़दूर पार्टी गाँव-देहात के ग्रामीण मज़दूरों की माँगों को लेकर मेहनतकश आबादी को संगठित कर रही है। मज़दूर पार्टी (RWPI) के उम्मीदवार अगर संसद में जाते हैं तो वे नीचे दी गयी माँगों को पूरा करने के लिए आवाज़ उठायेंगे :

1. ज़मीन का राष्ट्रीकरण किया जाये और जिन भी खेतों को जोतने का काम स्वयं किसान अपनी और अपने परिवार की मेहनत से नहीं करता, बल्कि नियमित तौर पर उजरती मज़दूरों से करवाता है, उसका सामूहिकीकरण कर खेतिहर मज़दूरों व ग़रीब किसानों के समूहों को साझी खेती के लिए सौंप दिया जाये या उन्हें मॉडल सरकारी फ़ार्मों में तब्दील कर दिया जाये। ज़मीन किसी की निजी सम्पत्ति नहीं हो सकती है, यह एक प्राकृतिक संसाधन है जिसे किसी मनुष्य ने पैदा नहीं किया है। इसलिए इस पर समूचे देश का साझा हक़ है।

2. सभी खेतिहर मज़दूरों के कार्य को श्रम क़ानूनों के मातहत लाया जाये और उनके कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए श्रम विभाग के उपयुक्त ढाँचे का निर्माण किया जाये।

3. बिना काम के अधिकार के संविधान में महज़ जीने का अधिकार लिख देना जनता के साथ एक बेशर्म धोखा है। काम के अधिकार को मूलभूत अधिकारों में शामिल किया जाये। इसके लिए आवश्यक संवैधानिक संशोधन किया जाये और 'भगतसिंह राष्ट्रीय रोज़गार गारण्टी अधिनियम' पारित किया जाये, जिसके तहत साल भर के पक्के रोज़गार की गारण्टी सरकार ले अथवा प्रति माह 10,000 रुपये बेरोज़गारी भत्ता दे।

4. वस्तु के रूप में मज़दूरी के भुगतान पर पूरी रोक लगायी जाये और हर उद्योग में मज़दूरी के भुगतान की नियत मासिक तिथि तय की जाये।

5. गाँवों में साफ़ पीने के पानी की समुचित व्यवस्था की जाये।

6. शौचालयों समेत साफ़-सफ़ाई की पूरी व्यवस्था की जाये।

7. समस्त सुविधायुक्त अस्पतालों व प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों का निर्माण किया जाये।

8. विभिन्न प्रकार के समारोहों के लिए सुविधासम्पन्न सामुदायिक केन्द्रों का निर्माण किया जाये।

9. गाँव की ग़रीब आबादी के लिए निःशुल्क पुस्तकालयों और व्यायामशालाओं का निर्माण किया जाये।

(RWPI के दिल्ली-हरियाणा क्षेत्र के बुलेटिन 'मेहनतकश की आवाज़' से)

डाइकिन एयरकण्डिशन के मज़दूरों का संघर्ष ज़िन्दाबाद!

राजस्थान के नीमराना स्थित डाइकिन एयरकण्डिशन के मज़दूर आन्दोलन की शुरुआत 2013 में कार्यस्थल की परिस्थितियों को लेकर हुई। इन माँगों के इर्द-गिर्द ही यूनियन बनने की शुरुआत हुई। परन्तु तत्काल ही कम्पनी ने यूनियन बनाने की कोशिश में लगे नेतृत्वकारी मज़दूरों को प्रताड़ित करना शुरू कर दिया था। तबादला, निलम्बन और निष्कासन से लेकर पुलिसिया लाठीचार्ज और झूठे केस झेलकर भी आज आन्दोलन जारी है। इस साल 8 जनवरी को कम्पनी गेट पर यूनियन झण्डा लगाने के प्रयास को कुचलने के लिए मज़दूरों पर पुलिस और बाउंसरों ने बर्बर दमन किया, जिसके बाद झूठे केस लगाकर मज़दूरों को जेल की सलाखों के पीछे डाल दिया गया और बड़ी संख्या में मज़दूरों की छँटनी हुई। गिरफ़्तारी के 50 दिनों बाद मज़दूर जमानत पर रिहा हो गये, लेकिन काम से निकाले गये मज़दूरों को कम्पनी ने अभी तक काम पर वापस नहीं लिया है। इस संघर्ष में एक क़ानूनी सफलता भी मिली है : लेबर कोर्ट में रद्द की गयी यूनियन रजिस्ट्रेशन की मान्यता उच्च न्यायालय में बहाल कर दी गयी है। परन्तु छँटनी के ख़िलाफ़ आज भी अलवर में ज़िला अधिकारी के दफ़्तर के बाहर मज़दूर क्रमिक भूख हड़ताल पर बैठे हैं।

हालाँकि कम्पनी मैनेजमेण्ट श्रम विभाग और प्रशासन की मदद से बातचीत को लम्बा खींच रहा है, ताकि मज़दूरों को थका कर, लालच व प्रलोभन देकर यूनियन व आन्दोलन को तोड़ा का सके। परन्तु कोई भी संघर्ष दमन से नहीं ख़त्म होता है, बल्कि आन्तरिक कमजोरी से हार जाता है। आज आन्दोलन का सबसे बुनियादी प्रश्न ठेका मज़दूरों और परमानेण्ट मज़दूरों की एकता बरकरार रखना है। संघर्ष में जहाँ अभी तक यह एकता बरकरार रही है, आगे इस संघर्ष के जीवित रहने के लिए कम्पनी में कार्यरत मज़दूरों को भी एक करना होगा। परन्तु नेतृत्व में ठेका मज़दूरों का प्रतिनिधित्व न होना आन्दोलन को कमजोर करेगा। यूनियन की नेतृत्वकारी कोर में ठेका मज़दूरों का प्रतिनिधित्व संघर्ष को चलाने के लिए बेहद ज़रूरी है। अलवर में चल रही क्रमिक भूख हड़ताल का भी प्रशासन पर असर पड़ेगा, अगर फ़ैक्टरी स्तर पर काम ठप्प हो। इस आन्दोलन को इलाक़ाई और सेक्टरगत विस्तार देना होगा यानी सिर्फ़ अलवर ज़िले की यूनियनों के प्रधानों की जगह पूरे सेक्टर में चक्का जाम करने के नारे के साथ उतरना होगा। जहाँ आज केवल एक कम्पनी के मज़दूर का अपनी फ़ैक्टरी की लड़ाई जीतना मुश्किल है, वहीं सेक्टरगत आधार पर क़ायम एकजुटता मालिकों को झुका सकती है। डाइकिन के बहादुर मज़दूर आज भी लड़ रहे हैं और उनके संघर्ष को पूरे गुड़गाँव से लेकर नीमराना का मज़दूर फ़ख़्र से देख रहा है।

– शाम मूर्ति

मोदी राज में न्यायपालिका का हाल : अच्छा है कि लोगों के भ्रम टूटें, आँखें खुलें

– शिशिर

वैसे तो पूँजीवाद में न्यायपालिका शासक वर्गों की ही सेवा करती है और आज़ादी के बाद के 70 वर्षों का इतिहास भी उसकी इसी भूमिका को साबित करता आया है। बीच-बीच में कुछ ऐसे फ़ैसले देना जिससे लोगों को लगे कि इस शोषक व्यवस्था के भीतर भी कहीं से न्याय की कुछ गुंजाइश बनी हुई है (भले ही उनमें से ज़्यादातर फ़ैसले काग़ज़ पर ही रह जायें) और कुल मिलाकर इस व्यवस्था के दूरगामी हितों का ध्यान रखना - यही न्यायपालिका का काम रहा है। लोकतन्त्र के "चार खम्भों", यानी विधायिका (संसद, विधानसभाएँ), कार्यपालिका (मन्त्रि-परिषद, नौकरशाही, सेना, पुलिस), न्यायपालिका और मीडिया, में से पहले दो जनता की निगाहों में पूरी तरह अपनी विश्वसनीयता पहले ही खो चुके थे। बहुत से लोगों को मीडिया पर भरोसा था कि वह सरकार पर सवाल उठाकर और सच्चाइयाँ सामने लाकर लोकतन्त्र को मज़बूत बनाता है। उससे भी ज़्यादा लोगों को न्यायपालिका पर विश्वास था कि वह सरकार पर अंकुश रखती है और नेताशाही-अफ़सरशाही के ग़लत कामों पर लगाम लगाती है। बहुतेरे लोगों को लगता था कि न्यायपालिका इस व्यवस्था में न्याय की आख़िरी उम्मीद है।

एक खाँटी फ़ासिस्ट हुकूमत की तरह मोदी शासन के पाँच वर्षों ने ही इन भ्रमों को काफ़ी हद तक तोड़ डाला है। मीडिया तो पूरी तरह नंगा हो चुका है। अपने कॉरपोरेट मालिकों के इशारे पर सरकार के दरवाज़े पर बैठी कुतिया की उसकी असलियत अब लोगों के सामने आ चुकी है। इसके साथ ही न्यायपालिका पर पड़े परदे भी उठ रहे हैं जिससे शोषक-लुटेरों के दूरगामी हितों के रक्षक की उसकी भूमिका भी उजागर हो रही है, और उसके बारे में लोगों के भ्रम भी तेज़ी से टूट रहे हैं। इन चन्द सालों में न्यायपालिका और "न्यायमूर्तियों" के इतने कारनामे सामने आये हैं कि उन पर एक अलग से विस्तृत लेख की ज़रूरत है जिसे हम 'मज़दूर बिगुल' के आगामी अंकों में देंगे। लेकिन यहाँ पर हम हाल की कुछ घटनाओं की ही चर्चा करेंगे।

अभी हाल में सर्वोच्च न्यायालय में एक मसला सुनवाई के लिए आया है, जिससे पता चलता है कि मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था में सबसे पवित्र निकाय मानी जाने वाली न्यायपालिका की हालत क्या हो चुकी है और उसकी असलियत क्या है।

सर्वोच्च न्यायालय में 2009 से ही एक याचिका दायर थी जिसके तहत पूछा गया था कि न्यायाधीशों की नियुक्ति को सूचना के अधिकार के तहत क्यों नहीं लाया जाना चाहिए। मौजूदा नियुक्ति की व्यवस्था में कोई पारदर्शिता नहीं है और जनता का इस प्रक्रिया पर कोई नियन्त्राण नहीं है। ऐसे में, विभिन्न शासक पार्टियाँ इन नियुक्तियों का उपयोग अपने हितों के अनुसार करती रही हैं। पहले भी ऐसा हुआ है, लेकिन फ़ासीवादी मोदी सरकार के दौर में जिस नंगेपन के साथ इस प्रक्रिया को अंजाम दिया गया है, उसने पूँजीवादी न्यायपालिका के चेहरे पर निष्पक्षता और न्यायपूर्णता का जो पर्दा था, वह लगभग उतार ही दिया है। हालत यह हो गयी कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को ही प्रेस कॉन्फ्रेंस करके मोदी सरकार के कार्यकाल में न्यायपालिका के साथ हो रही छेड़छाड़ पर आपत्ति रखनी पड़ी! ये समझदार न्यायाधीश थे, जिन्हें यह पता था कि यदि न्यायपालिका पर से जनता का भरोसा पूरी तरह उठ गया तो यह पूँजीवादी व्यवस्था के लिए बेहद ख़तरनाक होगा।

लेकिन अभी जो मसला सामने आया है, उसने न्यायपालिका की निष्पक्षता और पारदर्शिता की सच्चाई और साथ ही मोदी सरकार के न्यायपालिका को लेकर नापाक इरादों को पूरी तरह बेपर्द कर दिया है।

सरकार के प्रतिनिधि एटॉर्नी जनरल वेणुगोपाल ने इस याचिका का विरोध करते हुए सर्वोच्च न्यायालय की बेंच के सामने कहा कि न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया को पारदर्शी नहीं बनाया जा सकता है, क्योंकि इससे "संवेदनशील बातें" खुल जायेंगी! ज़रा सोचिए कि न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया में सरकार और न्यायपालिका के बीच कौन-सी संवेदनशील बातें होती हैं!? ज़ाहिर है, शासक वर्गों के हितों के लिए न्यायपालिका के फ़ैसले और उसका हस्तक्षेप बाधा न बने, यह सुनिश्चित करने के लिए सरकार और न्यायपालिका के बीच तमाम मन्त्रणाएँ होती होंगी। ज़ाहिर है कि कोई भी शासक वर्ग ऐसी "अन्दरूनी बातों" और "संवेदनशील बातों" को जनता के सामने खोलना नहीं चाहेगा!

सरकारी वकील के इस तर्क पर न्यायपालिका ने एक प्रकार से सहमति ही जता दी है। क्यों? क्योंकि एक दूसरा मसला भी न्यायपालिका में उठा हुआ है। वह मसला है जजों की सम्पत्ति के विषय में जानकारी को जनता के लिए खुला करना और इसे सूचना के अधिकार के मातहत लाना! इस पर भी न्यायपालिका और सरकार एक प्रकार की सहमति में नज़र आ रहे हैं! कहा जा रहा है कि इससे जजों की निजता ख़तरे में पड़ जायेगी! आम जनता के तो घरों के भीतर ख़ुफ़ियागीरी करने, उनके ईमेल, फ़ेसबुक आदि पर निगाह रखने, उनके बैंक खातों पर निगाह रखने, उनके फ़ोन टैप करने में भी निजता का अधिकार भंग होता नहीं दिखता है सरकार और न्यायपालिका को, लेकिन जजों की सम्पत्ति को सूचना के अधिकार के तहत लाने से ही उनकी निजता भंग हो जाती है! सम्पत्ति की जानकारी को सार्वजनिक करने से कैसी निजता भंग होती है?

ठीक इसी तरह, पार्टियों को चुनावी चन्दे के लिए चुनावी बॉण्ड के मुद्दे पर मोदी सरकार के महाधिवक्ता वेणुगोपाल ने सुप्रीम कोर्ट से कहा कि जनता को यह जानने का कोई अधिकार नहीं कि किसी दल को किससे कितनी रक़म मिली है। इससे तो दलों की निजता ख़तरे में पड़ जायेगी। सरकार ने माँग की कि सुप्रीम कोर्ट कम से कम इस चुनाव के ख़त्म होने तक इस मामले में कोई फ़ैसला नहीं सुनाये। कोई भी सोचेगा कि भाजपा को मिले पैसे कहाँ से आये हैं, इसे छिपाने की इतनी बेताबी आख़िर क्यों है? लोकतन्त्र में जनता को अपने प्रतिनिधियों के बारे में सबकुछ जानने का अधिकार भला क्यों नहीं होना चाहिए? पार्टियाँ किसके पैसे से चल रही हैं, इससे उन पार्टियों का चाल-चेहरा-चरित्र तय होता है, तो यह महत्वपूर्ण जानकारी जनता को क्यों नहीं मिलनी चाहिए? हर समझदार नागरिक यह उम्मीद करता है कि सरकार के इस बेहूदा तर्क पर सुप्रीम कोर्ट उसे कसकर फटकार लगायेगा और सारी जानकारी सामने रखने का आदेश देगा। लेकिन सुप्रीम कोर्ट में बैठे न्यायमूर्तियों ने कहा कि जनता को ये सब फ़ालतू की बातें जानने का अधिकार नहीं है। किससे कितना माल मिला, इसे बन्द लिफ़ाफ़े में रखकर 'केचुआ' यानी केन्द्रीय चुनाव आयोग को बता दो, मतदाता को बताने की कोई ज़रूरत नहीं। परदे में रहने दो, परदा न उठाओ, परदा जो उठ गया तो भेद खुल जायेगा! अब इसके बाद बस यही कहना बाक़ी रह जाता है कि किसे चुनना है उसका चुनाव भी केचुआ ही कर लिया करे, मतदाता की क्या ज़रूरत! अम्बानी, अडाणी, टाटा, बिड़ला ने जिस पार्टी को जिस अनुपात में माल दिया हो, उसी अनुपात में पार्टियों की सीटें घोषित कर दी जायें!

मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के तीनों ही अंग यानी सरकार, नौकरशाही-सेना-पुलिस तथा न्यायपालिका आपस में मित्रतापूर्ण सहकार के साथ काम करते हैं। लेकिन ऐसा वे जनता के हितों में नहीं बल्कि जनता के विरुद्ध करते हैं। कारण यह है कि शोषकों और शोषितों में कोई एकता या सहकार नहीं हो सकता है। शोषकों के बीच गहरा सहकार बना हुआ है। सवाल यह है कि क्या हम मेहनतकश और मज़दूर अपनी वर्ग एकजुटता और संगठन बनाने के लिए तैयार हैं या नहीं? जब तक हम इसके लिए तैयार नहीं होंगे, तब तक मौजूदा शासक वर्ग और उसकी व्यवस्था अपने तमाम निकायों से हमें लूटती रहेगी।

चीन में आईटी सेक्टर के कर्मचारियों ने कुख्यात "996" शेड्यूल के ख़िलाफ़ संघर्ष छेड़ा

– अखिल कुमार

तकनोलॉजी के विकास को देखते हुए आज 8 घण्टे काम, 8 घण्टे आराम और 8 घण्टे मनोरंजन की माँग भी पुरानी पड़ चुकी है। आज मज़दूर पहले से काफ़ी कम समय में उतना उत्पादन कर सकते हैं, जिसके लिए पहले कई घण्टों का समय लगता था। लेकिन, ज़मीनी हक़ीक़त क्या है? आज भी मज़दूरों से 12-12 घण्टे काम कराया जाना आम बात है। कई जगह तो 14-16 घण्टे तक भी काम कराया जाता है। और, ये हालात सिर्फ़ औद्योगिक क्षेत्र के ही नहीं हैं, बल्कि आईटी (सूचना प्रौद्योगिकी) सेक्टर के कर्मचारियों से भी इसी क़दर काम करवाया जाता है। कमोबेश दुनिया के तमाम देशों में यही हालात हैं।

चीन के नक़ली समाजवाद में मज़दूरों से कितनी भयावह स्थितियों में काम करवाया जाता है, यह सच्चाई अब किसी से छिपी नहीं है। इसके बारे में 'मज़दूर बिगुल' में भी कई रिपोर्टें छप चुकी हैं।

हाल ही में, चीन के आईटी सेक्टर के कर्मचारियों ने कुख्यात "996" शेड्यूल, यानी सप्ताह में 6 दिन सुबह 9 बजे से रात 9 बजे तक के कार्यदिवस के ख़िलाफ़ मोर्चा खोल दिया है। चीन में आईटी सेक्टर की ज़्यादातर कम्पनियाँ कर्मचारियों को "996" शेड्यूल के तहत काम करने के लिए राज़ी होने पर ही काम पर रखती हैं। कर्मचारियों ने ऐसी 150 से भी अधिक कम्पनियों की सूची तैयार की है, जो उनसे "996" शेड्यूल के तहत काम करवाने के अलावा जबरन और अक्सर बिना वेतन के ओवरटाइम भी करवाती हैं। हैरानी की बात नहीं कि इस सूची में अलीबाबा, हुवावेइ, पिनडुओडुओ, बाइटडांस जैसी बड़ी कम्पनियाँ भी शामिल हैं। अपने ग़ुस्से को ज़ाहिर करने और अपने हालात से दुनिया को वाक़िफ़ कराने के लिए आईटी कर्मचारियों ने अनूठे तरीक़ों का इस्तेमाल किया है। कर्मचारियों ने गिटहब नाम की सॉफ़्टवेयर वेबसाइट पर अपने काम के हालात के बारे में लिखकर, फ़ोटो और वीडियो डालकर चीन के लोगों और बाक़ी दुनिया तक अपनी बात पहुँचायी है। बात अब इतनी फैल चुकी है कि इन कम्पनियों के मालिकों को "996" शेड्यूल पर सफ़ाई देने के लिए मजबूर होना पड़ा है। ज़्यादातर मालिकों ने "996" शेड्यूल को पूरी बेशर्मी से जायज़ ठहराया है। अलीबाबा के संस्थापक जैक मा ने तो इस कुख्यात कार्यदिवस को बहुत बड़ा वरदान बताया है (बेशक पूँजीपतियों के लिए ये वरदान ही है!) और कहा है कि कर्मचारियों को इसे बोझ की बजाय सम्मान समझना चाहिए। जैक मा ने खुलेआम कहा है कि अलीबाबा सिर्फ़ उन्हीं कर्मचारियों को रखेगी जो "996" शेड्यूल के तहत काम करेंगे, 8 घण्टे का "सुविधाजनक" कार्यदिवस चाहने वालों के लिए अलीबाबा के दरवाज़े बन्द हैं।

जैक मा के उपरोक्त बयान में कोई भी बात नयी नहीं है। बल्कि, मज़दूरों को आये दिन अपने-अपने कार्यक्षेत्रों में ऐसी बातें सुनने को मिलती रहती हैं। छँटनी की तलवार हर वक़्त मज़दूरों के सिर पर सवार रहती है। जिसके कारण न चाहते हुए भी हमें ओवरटाइम करना पड़ता है। असंगठित होने के कारण मज़दूर इस स्थिति के विरुद्ध संघर्ष भी नहीं कर पाते। आमतौर पर उनका वेतन भी इतना कम होता है कि थोड़ा और कमा लेने के नाम पर भी वे अपनी "मर्ज़ी" से ओवरटाइम करते हैं और कोल्हू के बैल की तरह जुतकर पूँजीपतियों की तिजोरियाँ भरने में लगे रहते हैं। लेकिन, इन हालात का कारण कोई एक पूँजीपति या कम्पनी नहीं बल्कि पूरी पूँजीवादी व्यवस्था है, जिसे इन्सान से कोई मतलब नहीं, सिर्फ़ मुनाफ़े से मतलब होता है। मज़दूरों को जितना वेतन मिलता है, उतना उत्पादन तो वे कुछ ही घण्टों में कर देते हैं। बाक़ी पूरा समय वे पूँजीपतियों का मुनाफ़ा पैदा करने के लिए काम करते हैं। आज विकसित तकनोलॉजी की बदौलत मज़दूर दिन भर में कुछ ही घण्टे काम करके समाज की ज़रूरत लायक़ चीज़ें पैदा कर सकते हैं और बाक़ी समय ख़ुद के लिए तथा अपने परिवार और समाज के लिए जी सकते हैं। लेकिन, इस व्यवस्था में सुई से लेकर जहाज़ तक हर चीज़ बनाने वाले मज़दूर के पास कुछ नहीं होता, कारख़ानों-फ़ैक्टरियों से लेकर उनकी पैदा की हुई हर चीज़ का मालिकाना पूँजीपतियों के पास होता है। चीज़ों के उत्पादन से लेकर वितरण तक हर बात तय करने की शक्ति उन्हीं के पास है। उनके लिए मज़दूर मशीनों के चलते-फिरते पुर्ज़ों के अलावा और कुछ भी नहीं हैं। वे उन्हें बस इतना खाने लायक़ वेतन और बस इतना आराम करने लायक़ समय देते हैं कि मज़दूर उनके लिए हाड़तोड़ मेहनत करते रह सकें।

चीन में 1949 की क्रान्ति के बाद क़ायम समाजवाद के दौरान मज़दूर ख़ुद अपनी ज़िन्दगी के, अपने उत्पादन के और अपने देश के मालिक थे। फ़ैसले की ताक़त वास्तव में उनके हाथों में थी। लेकिन चीनी क्रान्ति के नेता माओ त्से-तुङ के निधन के बाद 1976 से चीन के नये शासकों ने उल्टी बयार बहानी शुरू कर दी। उन्होंने समाजवाद की एक-एक उपलब्धि को ख़त्म करना और पूँजीवाद को फिर से क़ायम करना शुरू कर दिया। आज चीन बस नाम के लिए समाजवादी देश है। वहाँ पूँजीवाद की सारी बुराइयाँ भयंकर रूप में लौट आयी हैं। चीन के जिस "विकास" की आज पूरी दुनिया में चर्चा है, वह करोड़ों मज़दूरों के बर्बर शोषण और दमन पर टिका हुआ है। लेकिन चीन के मज़दूर लगातार इसके ख़िलाफ़ लड़ रहे हैं। आईटी सेक्टर के कर्मचारियों का संघर्ष चीनी मज़दूर वर्ग के संघर्षों के अटूट सिलसिले की एक कड़ी है।

चुनावों में रणकौशलात्मक हस्तक्षेप की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट कार्यदिशा क्या है?

(पेज 1 से आगे)

आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति का स्वयं रचनात्मक विश्लेषण करने की बजाय, 1963 में चीन की पार्टी द्वारा पेश आम दिशा पर ही अटके हुए हैं और जूते की नाप से पाँव काटने की कवायद किये जा रहे हैं। लेकिन उससे भी अहम बात यह है कि यदि अर्द्धसामन्ती-अर्द्धऔपनिवेशिक संरचना के सिद्धान्त को भी स्वीकार किया जाय, तो हर सूरत में बहिष्कारवाद की कार्यदिशा को स्वयं माओ ने ही ग़लत माना था और कहा था कि अन्य सभी ज़रियों के चुक जाने और राज्य द्वारा सक्रिय हथियारबन्द प्रतिक्रान्ति का सामना करने के कारण ही चीनी क्रान्ति को दीर्घकालिक लोकयुद्ध का रास्ता अपनाना पड़ा था। माओ इस बाबत स्तालिन के मूल्यांकन को पेश करते हुए उसे सही ठहराते हैं। लेकिन समस्या यह है कि हमारे देश के जल्दबाज़ "वामपंथी" दुस्साहसवादी माओ के इन विचारों को भी पढ़ने और उस पर विचार करने को तैयार नहीं हैं।

यह समझना आज बेहद ज़रूरी है कि चुनावों में रणकौशलात्मक भागीदारी की कम्युनिस्ट कार्यदिशा क्या है और इस बाबत महान शिक्षकों, यानी कि मार्क्स, एँ गेल्स, लेनिन, स्तालिन और माओ के क्या विचार थे। इन विचारों को आज के सन्दर्भ में समझने और लागू करने का कई कारणों से आज विशेष महत्व है और अब हम इसी पर विचार करेंगे।

पूँजीवादी चुनावों के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट अवस्थिति: मार्क्स से माओ तक

सैद्धान्तिक तौर पर यह सवाल कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के बीच बहुत पहले ही हल किया जा चुका है। लेकिन फिर भी इस सवाल पर चर्चा करना ज़रूरी है कि रणकौशलात्मक भागीदारी की कार्यदिशा क्यों तय की गयी और मार्क्स से लेकर माओ तक ने इस कार्यदिशा को अपने-अपने तरीके से पुष्ट क्यों किया। इसका कारण यह है कि सैद्धान्तिक तौर पर हल होने के बावजूद आज भी हमारे देश के और पूरी दुनिया के कम्युनिस्ट आन्दोलन में इस प्रश्न पर भयंकर विभ्रम की स्थिति बनी हुई है। एक ओर तो दक्षिणपंथी सामाजिक-जनवादी, यानी कि संसदवादी वामपंथी विपथगामिता है, तो दूसरी ओर कई क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट संगठनों/पार्टियों में विविध रूपों में वामपंथी बहिष्कारवाद और साथ ही कुछ अन्य क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट संगठनों/पार्टियों में दक्षिणपंथी संसदवाद का विचलन मौजूद है। ऐसे में, क्लासिकीय मार्क्सवादी-लेनिनवादी अवस्थिति को एक बार फिर से दुहराना और रेखांकित करना, खास तौर पर ज़रूरी हो गया है।

यह इसलिए भी ज़रूरी है कि 'माओवाद' का कैरीकेचर पेश करते हुए हमारे देश में मौजूद वामपंथी दुस्साहसवादी माओ पर बहिष्कारवाद की कार्यदिशा आरोपित कर रहे हैं और दावा कर रहे हैं कि माओ के अनुसार तत्काल सशस्त्र संघर्ष और दीर्घकालिक लोकयुद्ध की कार्यदिशा वास्तव में लेनिन द्वारा पेश चुनावों में रणकौशलात्मक भागीदारी की कार्यदिशा का नये दौर में निषेध था और अब यही कार्यदिशा कम-से-कम सभी एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के देशों में लागू होने वाली सार्वभौमिक कार्यदिशा है। यह पूरी सोच सिरे से ग़लत है और माओ की समूची कार्यदिशा को न समझने से पैदा हुई है, जैसाकि हम आगे दिखायेंगे। इसका खण्डन आज इसलिए ज़रूरी है कि ऐसी बहिष्कारवादी "वामपंथी" और अराजकतावादी कार्यदिशा से आज के दौर में उससे कहीं ज़्यादा नुकसान हो रहा है जितना कि मार्क्स या लेनिन के दौर में हो रहा था। इसका कारण यह है कि जब मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन ने पूँजीवादी चुनावों में रणकौशलात्मक भागीदारी की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट कार्यदिशा पेश की थी, उस समय कहीं भी स्त्री व पुरुष, दोनों के लिए सार्विक वयस्क मताधिकार लागू नहीं हुआ था। आज जबकि वयस्क सार्विक मताधिकार लागू है, तो पूँजीवादी जनवादी विभ्रमों की कहीं ज़्यादा व्यापक ज़मीन भी मौजूद है, हालाँकि साम्राज्यवादी संकट, फासीवादी उभार और जनवादी संस्थाओं और प्रक्रियाओं के क्षरण के साथ एक दूसरे अर्थ में यह ज़मीन कमज़ोर भी हुई है। लेकिन इतना साफ़ है कि आज पूँजीवादी चुनावों में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों द्वारा रणकौशलात्मक भागीदारी की प्रासंगिकता और महत्व पहले के किसी भी दौर से कहीं ज़्यादा है। अब आइये, इस विषय पर महान शिक्षकों के विचारों पर संक्षेप में निगाह डालते हैं।

मार्क्स और एंगेल्स ने 1848 के ठीक बाद यह कहा था कि जनवादी क्रान्ति की मंजिल में मज़दूरों को चुनावों में उदार बुर्जुआ व निम्न बुर्जुआ उम्मीदवारों को अपना समर्थन देना चाहिए, लेकिन इसके तत्काल बाद ही अपनी अवस्थिति को बदलते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि जनवादी क्रान्ति की मंजिल में भी उदार बुर्जुआ वर्ग अपने ढुलमुल रवैये के कारण मज़दूरों के वर्ग हित की किसी भी रूप में नुमाइन्दगी नहीं कर सकता है। यही कारण था कि 1850 में ही कम्युनिस्ट लीग की केन्द्रीय कमेटी के समक्ष भाषण में मार्क्स ने कहा :

"जब चुने जाने की कोई सम्भावना न भी हो तो भी मज़दूरों को अपने उम्मीदवार अवश्य खड़े करने चाहिए ताकि वे **अपनी स्वतन्त्रता को बचाये रख सकें,अपनी शक्ति का आकलन कर सकें, और जनता को अपने क्रान्तिकारी रवैये और पार्टी के दृष्टिकोण तक ला सकें।** इस बाबत उन्हें अपने आपको जनवादियों के ऐसे तर्कों के झाँसे में नहीं आने देना चाहिए कि, मसलन, ऐसा करके वे जनवादी दल को तोड़ रहे होंगे और प्रतिक्रियावादियों की विजय को सम्भव बना रहे होंगे। ऐसे सारे जुमलों का अन्तिम उद्देश्य सर्वहारा वर्ग को धोखा देना होता है। ऐसी स्वतन्त्र कार्रवाई से सर्वहारा पार्टी की जो सुनिश्चित उन्नति होगी, वह प्रतिनिधि निकाय में कुछ प्रतिक्रियावादियों की मौजूदगी से होने वाले नुकसान से असीमित रूप से अधिक फ़ायदेमन्द है।"

मज़ेदार बात यह है कि आज हमारे दौर में भी, जबकि हम समाजवादी क्रान्ति की मंजिल में हैं, न सिर्फ़ आम आदमी पार्टी जैसी टटपुँजिया और छोटे मालिकों की पार्टी मज़दूरों को ऐसा ही धोखा देने का प्रयास कर रही है, बल्कि तमाम तथाकथित वामपंथी बुद्धिजीवी भी यह सलाह दे रहे हैं कि सर्वहारा वर्ग को अपना स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष पेश करने की बजाय, किसी भी ऐसे उम्मीदवार को वोट दे देना चाहिए, जो कि भाजपा और मोदी को हराने की क्षमता रखता हो, चाहे वह कांग्रेस हो, सपा-बसपा का गठबन्धन हो, वाम मोर्चा हो या कोई और छोटे या बड़े पूँजीपतियों की प्रतिनिधि पार्टी हो! ऐसे टटपुँजिया तर्क का मार्क्स ने 1850 में ही विरोध किया था और स्पष्ट किया था कि मज़दूर वर्ग को हर कीमत पर अपनी राजनीतिक स्वायत्तता और स्वतन्त्रता को बरकरार रखना चाहिए।

इसी प्रकार एंगेल्स ने मार्क्स की रचना 'फ्रांस में वर्ग संघर्ष, 1848-50' की अपनी 1895 की प्रस्तावना में चुनावों में रणकौशलात्मक भागीदारी के महत्व पर विशेष तौर पर ज़ोर दिया था। इस प्रस्तावना में एँ गेल्स लिखते हैं :

"...अगर सार्विक मताधिकार से और कोई फ़ायदा न भी हुआ हो, तो यह फ़ायदा तो हुआ ही है कि हम हर तीन वर्ष में अपनी संख्या का आकलन कर सकते हैं, नियमित तौर पर तयशुदा तौर पर वोटों की संख्या में होने वाली अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी के साथ इसने उसी अनुपात में मज़दूरों की विजय की निश्चितता को और उनके विरोधियों की निराशा को बढ़ाया है, और इसलिए यह **प्रचार का हमारा सर्वश्रेष्ठ ज़रिया** बन गया है; कि इसने हमें हमारी शक्ति और साथ ही सभी शत्रुतापूर्ण पार्टियों की शक्ति के बारे में सटीक सूचना दी है, और इस प्रकार हमें हमारी कार्रवाइयों के स्तर का सही आकलन करने का अद्वितीय उपकरण भी दिया है, जो हमें न सिर्फ असमय कातरता से बचाता है, बल्कि असमय दुस्साहसिकता से भी बचाता है – अगर हमें सार्विक मताधिकार से केवलयही फ़ायदे मिले होते तो भी यह काफ़ी होता। लेकिन हमें इससे ज़्यादा फ़ायदा मिला है। **चुनाव प्रचार के रूप में इसने हमें जनता के व्यापक जनसमुदायों के साथ सम्पर्क स्थापित करने का अद्वितीय ज़रिया दिया है, जहाँ कहीं भी वे हमसे कटे हुए हैं; अन्य सभी पार्टियों को हमारे हमलों से जनता के समक्ष अपने विचारों व कार्रवाइयों का बचाव करने पर मजबूर कर दिया है; और इसके अलावा, इसने राइख़स्टाग** (जर्मनी की संसद–सं) **में हमारे प्रतिनिधियों के समक्ष एक ऐसा मंच खोल दिया है जहाँ से वे संसद में अपने विरोधियों से और साथ ही संसद के बाहर जनसमुदायों से संवाद कर सकते हैं, और वह भी उससे बिल्कुल अलग किस्म के प्राधिकार और स्वतंत्रता के साथ, जो कि हमें प्रेस में या जनसभाओं में मिलता है।** सरकार और पूँजीपति वर्ग के लिए उनके समाजवाद-विरोधी क़ानून किस काम आये जबकि चुनाव प्रचार और राइखस्टाग में समाजवादी भाषण लगातार उसे भेदते रहे।"

एंगेल्स ने 1895 के काफ़ी पहले से ही संसद का बहिष्कार करने की "वामपंथी" और अराजकतावादी कार्यदिशा पर चोट की थी। 'बाकुनिनिस्ट्स एट वर्क' नामक अपने लेख में एँ गेल्स ने अराजकतावादी बाकुनिनपंथियों की इस कार्यदिशा पर चोट करते हुए लिखा था :

"बाकुनिनपंथी "राजनीतिक एब्सटेंशन" का यही नतीजा होता है। शान्ति काल में जबकि सर्वहारा वर्ग पहले से ही जानता है कि वह ज़्यादा से ज़्यादा जो हासिल कर सकता है वह है कि अपने कुछ प्रतिनिधियों को वह संसद में पहुँचा सके, और जब उसके द्वारा संसद में बहुमत-प्राप्त करने की कोई उम्मीद नहीं है, तो यहाँ-वहाँ मज़दूरों को इस बात पर सहमत करना सम्भव हो सकता है कि चुनावों के दौरान घर बैठे रहना एक महान क्रान्तिकारी कार्रवाई है और सामान्य तौर पर एक ठोस वास्तविक राज्य पर, जिसमें कि हम रहते हैं और जो हमारा दमन करता है, हमला करने की बजाये एक अमूर्त राज्य पर हमला किया जाये जो कि कहीं मौजूद ही नहीं है, और इसलिए वह अपनी रक्षा कर ही नहीं सकता है। यह उस जनता के लिए क्रान्तिकारी होने का नाटक करने का एक आडम्बरपूर्ण तरीका है, जो कि आसानी से हतोत्साहित हो जाती है...

"लेकिन जैसे ही घटनाएँ स्वयं सर्वहारा वर्ग को अग्रभूमि में ला खड़ा करती हैं, तो मतदान से अलग रहने की नीति एक स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाली असंगति के रूप में सामने आ जाती है, और मज़दूर वर्ग द्वारा सक्रिय हस्तक्षेप एक न टाली जा सकतने वाली अनिवार्यता बन जाती है।"

इसी लेख में मज़दूर वर्ग द्वारा स्पेन में चुनावों में भागीदारी कर अपने राजनीतिक प्रचार व शिक्षण-प्रशिक्षण के मौके को बाकुनिनपंथियों की फूटपरस्त ग़लत नीतियों के चलते गँवा देने की आलोचना करते हुए एंगेल्स लिखते हैं :

"स्पेन के मज़दूरों में उस समय इण्टरनेशनल (मज़दूरों का पहला अन्तरराष्ट्रीय राजनीतिक संगठन–सं.) के नाम के प्रति अभी भी जो ज़बरदस्त आकर्षण था और कम से कम राजनीतिक उद्देश्यों के लिए स्पैनिश सेक्शन ने अभी तक जो शानदार संगठन कायम रखा था, उसके मद्देनज़र यह निश्चित था कि कैटालोनिया के कारख़ाना ज़िलों में, वैलेंसिया में, अंदालूसिया के शहरों, आदि में इण्टरनेशनल द्वारा नामित व समर्थित सभी उम्मीदवारों को शानदार जीत मिली होती, जोकि दोनों रिपब्लिकन समूहों के बीच किसी भी मसले पर फैसला लेने के लिए वोटिंग होने की सूरत में कोर्टेस (संसद) में एक पर्याप्त रूप से शक्तिशाली अल्पसंख्या पैदा कर देती। मज़दूर स्वयं इस बात को महसूस कर रहे थे; उन्हें लग रहा था कि अपने शक्तिशाली संगठन को काम में लाने का समय आ चुका है। लेकिन बाकुनिनपंथी स्कूल के सम्माननीय नेतागण लम्बे समय से बिना शर्त मतदान से दूर रहने का मंत्र प्रचारित कर रहे थे, और वे अचानक इस प्रक्रिया को पलट नहीं सके।"

उपरोक्त उद्धरणों से इतना साफ तौर पर देखा जा सकता है कि आम तौर पर बुर्जुआ चुनावों और संसद में रणकौशलात्मक भागीदारी के प्रश्न पर मार्क्स और एंगेल्स के समय में भी कम्युनिस्ट अवस्थिति स्पष्ट थी। जिस प्रकार मार्क्स और एंगेल्स ने अपने समय के अराजकतावादी और "वामपंथी" भटकावों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए इस अवस्थिति को विकसित किया था, उसी प्रकार लेनिन ने भी अपने दौर में मौजूद वामपंथी और दुस्साहसवादी अवस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए इसी अवस्थिति को विकसित किया। लेनिन के दौर में रणकौशलात्मक भागीदारी की कार्यदिशा इसलिए भी अधिक स्पष्टता के साथ विकसित हुई क्योंकि इस दौर में अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में पार्टी का सिद्धान्त भी सांगोपांग रूप ले चुका था। इसका श्रेय भी लेनिन को ही जाता है। कम्युनिस्ट पार्टी कैसी हो, उसका ढाँचा और संगठन कैसा हो, इस बारे में लेनिन का चिन्तन आज भी सभी संजीदा मार्क्सवादी-लेनिनवादी क्रान्तिकारियों के लिए केन्द्रीय महत्व रखता है।

मार्क्स और एंगेल्स के दौर के बाद बहिष्कार के वामपंथी भटकाव ने फिर से लेनिन के दौर में यानी बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों में वापसी की। इस दौर में बहिष्कारवाद के भटकाव ने कई प्रकार के रूप लिये जैसे कि चुनावों से दूर रहने की कार्यदिशा (एब्सटेंशन) या निष्क्रिय बहिष्कार की कार्यदिशा और सक्रिय बहिष्कार की कार्यदिशा। लेनिन ने इन दोनों ही प्रकार के बहिष्कार की कार्यदिशाओं का खण्डन किया और इस प्रक्रिया में पूँजीवादी चुनावों और संसदों के विषय में सही कम्युनिस्ट कार्यदिशा को आगे विकसित किया।

विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन में और साथ ही हमारे देश के कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास में एक पुराना "वामपंथी" कम्युनिस्ट तर्क यह रहा है कि चूँकि बुर्जुआ संसदें राजनीतिक शक्ति का असली केन्द्र नहीं होतीं और चूँकि वास्तविक सत्ता के निकाय सशस्त्र बल, पुलिस, नौकरशाही आदि होते हैं इसलिए बुर्जुआ संसदों को बेनकाब करने और उसके असली राजनीतिक चरित्र को बेनक़ाब करने की कोई

(पेज 9 पर जारी)

चुनावों में रणकौशलात्मक हस्तक्षेप की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट कार्यदिशा क्या है?

(पेज 8 से आगे)

ज़रूरत नहीं है। लेनिन ने बताया कि ठीक इसीलिए संसद की असलियत को उजागर करने की आवश्यकता है कि वह पूँजीवादी राज्यसत्ता का असली शक्ति का केन्द्र नहीं होती और असली शक्ति सशस्त्र बलों, पुलिस व नौकरशाही के पास होती है जो कि पूँजीवादी राज्यसत्ता के स्थायी निकाय होते हैं। लेनिन ने जनवादी क्रान्ति के दौर में भी इस बात को साफ शब्दों में बताया था। 'वर्तमान परिस्थिति का मूल्यांकन' नामक अपने लेख में लेनिन लिखते हैं :

"तीसरी दूमा (रूसी संसद) कोई समझौते का निकाय नहीं है, बल्कि सीधे तौर पर एक प्रतिक्रियावादी निकाय है जो कि निरंकुश तंत्र को छिपाती नहीं है,बल्कि उसका पर्दाफ़ाश करती है, और जो किसी भी अर्थ में कोई स्वतंत्र भूमिका अदा नहीं करती। कोई भी कपोलकल्पना नहीं करता कि ज़ारशाही की वास्तविक शक्ति दकियानूस कट्टरवादियों की इस सभा में निहित है। सभी सहमत हैं कि ज़ारशाही इस पर टिकी नहीं है, बल्कि इसका इस्तेमाल करती है, कि ज़ारशाही अपनी सम्पूर्ण वर्तमान नीति को हर सूरतमें लागू कर सकती है,चाहे ऐसी दूमा को स्थगित कर दिया जाये (जैसे कि 1878 में तुर्की में संसद को "स्थगित" कर दिया गया था) और चाहे इसे 'ज़ेम्स्की सोबोर' या ऐसी किसी चीज़ से प्रतिस्थापित कर दिया जाये। 'दूमा मुर्दाबाद' के नारे का अर्थ होगा मुख्य आक्रमण को एक ऐसी संस्था पर केन्द्रित करना जो कि न तो स्वतन्त्र है और न ही निर्णयकारी, और जो कोई प्रधान भूमिका निभाती ही नहीं है। ऐसा नारा ग़लत होगा। हमें पुराने नारों, यानी 'निरंकुश तंत्र मुर्दाबाद' और 'संविधान सभा जिन्दाबाद' के नारों को ही कायम रखना चाहिए क्योंकि वास्तव में यह निरंकुश तंत्र ही है जो कि असली प्राधिकार, प्रतिक्रिया का असली समर्थन आधार व समर्थन स्तम्भ बना हुआ है। निरंकुश तंत्र के पतन का अनिवार्य रूप से अर्थ होगा ज़ारशाही की एक संस्था के तौर पर तीसरी दूमा की बर्खास्तगी (और वह भी क्रान्तिकारी बर्खास्तगी) लेकिन अपनेआप में तीसरी दूमा के पतन का अर्थ होगा उसी निरकुश तंत्र का कोई नया गोरखधंधा या सुधार को कोई प्रयास – एक धोखेबाज़ और केवल प्रतीतिगत सुधार – उसी निरंकुशतंत्र द्वारा।"

1912 में लेनिन ने अपने लेख 'ऑन दि ईव ऑफ़ इलेक्शंस टू दि फ़ोर्थ दूमा' में बुर्जुआ चुनावों के क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट इस्तेमाल के विषय में लिखा कि पार्टी चुनावों के लिए कोई प्लेटफ़ॉर्म नहीं होती बल्कि कम्युनिस्ट कार्यक्रम के प्रचार-प्रसार के लिए चुनाव एक ज़रिया व मंच होते हैं। इसलिए चुनावों में क्रान्तिकारी हस्तक्षेप को चलते-चलाते किये जाने वाले कार्य के अन्दाज़ में नहीं बल्कि बेहद संजीगदगी के साथ किया जाना चाहिए। लेनिन इसी लेख में लिखते हैं :

" 'चुनावों के लिए' कोई मंच नहीं बल्कि क्रान्तिकारी सामाजिक-जनवादी प्लेटफॉर्म के कार्यान्वयन के लिए चुनाव! – मज़दूर वर्ग की पार्टी इसे इसी प्रकार से देखती है। **हमने पहले ही इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु चुनावों का इस्तेमाल किया है और हम पूरी तरह उनका इस्तेमाल करेंगे। रूसी सामाजिक जनवादी मज़दूर पार्टी के क्रान्तिकारी प्लेटफ़ॉर्म, रणकौशल व कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए हम सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी दूमा का भी इस्तेमाल करेंगे। वास्तव में मूल्यवान वे ही प्लेटफ़ॉर्म होते हैं, जो क्रान्तिकारी प्रचार के लम्बे कार्यभार को पूरा करते हैं...**"

1919 में लेनिन ने 'इतालवी, फ्रांसीसी व जर्मन कम्युनिस्टों को शुभकामनाएँ' नामक लेख में संसद का बहिष्कार करने की नीति पर चोट करते हुए लिखा :

"मार्क्सवादी सिद्धान्त और साथ ही तीन क्रान्तियों (1905, फरवरी 1917 और अक्टूबर 1917) के अनुभवों, दोनों के ही नज़रिये से, मैं किसी बुर्जुआ संसद में, किसी प्रतिक्रियावादी...ट्रेड यूनियन में, किसी अतिप्रतिक्रियावादी मज़दूर परिषद में, जो कि शीडमान सरीखे लोगों द्वारा पंगु बना दी गयी हो, शिरकत करने से इंकार करने को एक निस्संदेह ग़लती मानता हूँ।

"किन्हीं विशिष्ट मौक़ों पर, विशिष्ट देशों में बहिष्कार सही होता है, जैसेकि 1905 में ज़ारवादी दूमा का बोल्शेविकों द्वारा बहिष्कार। लेकिन उन्हीं बोल्शेविकों ने 1907 की कहीं ज़्यादा प्रतिक्रियावादी और सीधे-सीधे प्रतिक्रान्तिकारी दूमा में हिस्सा लिया। 1917 में बोल्शेविक बुर्जुआ संविधान सभा के चुनाव लड़े और 1918 में हमने इसी संविधान सभा को भंग कर डाला, जिससे तमाम टटपुँजिया जनवादी, काऊत्स्की सरीखे लोग और समाजवाद से ग़द्दारी करनेवाले अन्य लोग आतंकित हो उठे थे।...

"केवल बदमाश और नौसिखुआ लोग सोच सकते हैं कि पहले सर्वहारा वर्ग को बुर्जुआ वर्ग के जुवे के नीचे होने वाले, उजरती ग़ुलामी के जुवे के नीचे होने वाले चुनावों में बहुसंख्या जीतनी होगी और केवल तभी वह राजनीति सत्ता जीत सकता है। यह मूर्खता की, या फिर पाखण्ड की पराकाष्ठा है; इसका अर्थ होगा वर्ग संघर्ष और क्रान्ति की जगह पुरानी व्यवस्था के मातहत और पुरानी सत्ता के साथ होने वाले चुनावों को रख देना।

"सर्वहारा वर्ग अपने संघर्ष को चलाता रहता है और कोई हड़ताल शुरू करने से पहले चुनाव का इन्तज़ार नहीं करता है, हालाँकि किसी हड़ताल की पूर्ण सफलता के लिए, मेहनतकश जनता की बहुसंख्या की (और, इससे यह स्वत: ही निकलता है कि आबादी की बहुसंख्या की) हमदर्दी हासिल करना अनिवार्य होता है; पर सर्वहारा वर्ग अपना वर्ग संघर्ष चलाता है और (बुर्जुआ वर्ग की देखरेख में होने वाले और उसके जुवे तले होने वाले) किसी प्रारम्भिक चुनाव का इन्तज़ार किये बिना उसका तख़्तापलट देता है; और सर्वहारा वर्ग को अच्छी तरह से पता होता है कि उसकी क्रान्ति की सफलता के लिए, बुर्जुआ वर्ग के तख्तापलट की सफलता के लिए, यह एकदम ज़रूरी है कि मेहनतकश जनता की...बहुसंख्या की हमदर्दी उसके साथ हो।...

"आपको उन लोगों की ग़लती को समझने के लिए जो कि बुर्जुआ संसदों, प्रतिक्रियावादी ट्रेड यूनियनों, ज़ारवादी या शीडमान शॉप स्टीवर्ड कमेटियों या वर्क्स काउंसिलों आदि में भागीदारी करने को "निषिद्ध" बना देते हैं, केवल सत्ता के लिए सर्वहारा संघर्षों – एक ऐसा संघर्ष जो कि रूपों की असाधारण विविधता में और तीर्व परिवर्तनों, मोड़ों और एक रूप से दूसरे रूप में जाने के आश्चर्यजनक रूप से भरपूर उदाहरणों में समृद्ध है – के जटिल, मुश्किल और लम्बे इतिहास पर थोड़ा विचार करने की आवश्यकता है। यह एकदम ईमानदार, प्रतिबद्ध और बहादुर मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारियों में क्रान्तिकारी अनुभव की कमी के कारण होने वाली ग़लती है।"

उपरोक्त उद्धरण में लेनिन स्पष्ट तौर पर बताते हैं कि 1905 की दूमा के बहिष्कार के अलावा, बोल्शेविकों ने उससे कहीं ज़्यादा प्रतिक्रियावादी दूमा में हिस्सेदारी की क्योंकि1905 का समय एक क्रान्तिकारी परिस्थिति का समय था। दूसरे शब्दों में, क्रान्तिकारी परिस्थिति के दौर के अलावा बहिष्कार के नारे को किसी भी अन्य दौर में सही नहीं ठहराया जा सकता है। लेनिन बताते हैं कि सर्वहारा वर्ग का सत्ता के लिए वर्ग संघर्ष बहुत से रूप लेता है, जिसमें से बुर्जुआ चुनावों में की जाने वाली रणकौशलात्मक भागीदारी एक रूप है औश्र एक अहम रूप है और इसलिए इस रूप में को सैद्धान्तिक तौर पर निषिद्ध बना देना या इसके पूर्ण रूप से खारिज कर देना एक भयंकर भूल है और राजनीतिक अनुभवहीनता को प्रदर्शित करता है। लेनिन के अनुसार, माकपा व भाकपा जैसी संशोधनवादी पार्टियों के समान संसद के दक्षिणपंथी सुधारवादी इस्तेमाल और संसद के "वामपंथी" कम्युनिस्ट बहिष्कार दोनों ही भिन्न प्रकार की टटपुंजिया गलतियाँ हैं। एक दक्षिणपंथी टटपुंजिया ग़लती है तो दूसरी "वामपंथी" टटपुंजिया ग़लती है। भारत में माकपा, भाकपा, भाकपा (माले) आदि जैसी संशोधनवादी पार्टियाँ वामपंथ के दायरे में दक्षिणपंथी टटपुंजिया ग़लती का शिकार हैं, तो भाकपा (माओवादी) व अन्य "वामपंथी" दुस्साहसवादी कम्युनिस्ट संगठन/पार्टियाँ "वामपंथी" टटपुंजिया ग़लती का शिकार हैं। इन दोनों छोरों की गलतियों के बारे में लेनिन इसी लेख में लिखते हैं:

"समाजवाद के ग़द्दारों शीडमानों व काऊत्स्कियों के विरुद्ध संघर्ष को निर्ममताके साथ चलाया जाना चाहिए, **लेकिन इस मुद्दे पर नहीं कि बुर्जुआ संसदों, प्रतिक्रियावादी ट्रेड यूनियनों आदि में हिस्सेदारी की जाये या न की जाये।** यह ज़ाहिरा तौर पर एक ग़लती होगी,और इससे भी बड़ी ग़लती होगी मार्क्सवाद के विचारों और उसकी व्यावहारिक कार्यदिशा (एक शक्तिशाली, केन्द्रीकृत राजनीतिक पार्टी) से संघाधिपत्यवाद के विचारों और व्यवहार की ओर पीछे हटना। ऐसी बुर्जुआ संसदों में, प्रतिक्रियावादी ट्रेड यूनियनों में और "वर्क्स" काउंसिलों में पार्टी की भागीदारी के लिए काम करना अनिवार्य है, जो कि शीडमान-सरीखी शैली से अंग-भंग हो चुकी हों और बधिया बना दी गयी हों, **ताकि पार्टी हर उस जगह उपस्थित हो सके जहाँ मज़दूर हैं, जहाँ मज़दूरों से बात करना, मेहनतकश जनसमुदायों कोप्रभावित करना सम्भव हो।**"

1919 में ही लेनिन ने 'कॉमरेड सेराती और सभी इतालवी कम्युनिस्टों के नाम' अपने पत्र में बहिष्कारवाद की दिशा का फिर से निषेध किया और इतालवी कम्युनिस्टों को इस बाबत सही कार्यदिशा अपनाने के लिए बधाई दी :

"मैं सभी इतालवी कम्युनिस्टों को हार्दिक शुभकामनाएँ भेजता हूँ और आपकी लम्बी सफलता की कामना करता हूँ। इतालवी पार्टी की मिसाल पूरी दुनिया के लिए विशाल महत्व रखेगी। विशेष तौर पर बुर्जुआ संसदों में भागीदारी के विषय में आपकी कांग्रेस में पारित प्रस्ताव मेरी राय में एकदम सही है और मैं उम्मीद करता हूँ कि यह जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी में एकता हासिल करने में मदद करेगी, जिसमें कि इसी मुद्दे पर अभी-अभी फूट पड़ी है।"

1920 में विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन और विशेष तौर पर जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी में संसद में भागीदारी के प्रश्न पर चल रही बहस के सन्दर्भ में लेनिन ने मॉस्को सोवियत के प्रतिनिधियों की एक बैठक में स्पष्ट शब्दों में कहा कि वर्ग संघर्ष के अनुभवों ने बिना शक़ यह दिखला दिया है कि बुर्जुआ संसदों का कम्युनिस्टों द्वारा क्रान्तिकारी इस्तेमाल एक ऐतिहासिक अनिवार्यता है। लेनिन लिखते हैं :

"एक बार फिर से असहमतियाँ सिर उठा रही हैं, मिसाल के तौर पर संसदों के इस्तेमाल के प्रश्न पर, लेकिन रूसी क्रान्ति और गृहयुद्ध के अनुभव, लीब्कनेख्त के व्यक्तित्व और सांसदों के बीच उनकी भूमिका व महत्व जबसे दुनिया को ज्ञात हो चुके हैं, **संसदों के क्रान्तिकारी इस्तेमाल को खारिज करना बेतुका हो चुका है।** पुराने तरीके से सोचने वाले लोगों को यह स्पष्ट हो गया है कि राज्यसत्ता के प्रश्न को पुराने अन्दाज़ में पेश नहीं किया जा सकता है, कि इस प्रश्न पर पुरानी किताबी पहुँच की जगह व्यवहार पर आधारित और क्रान्तिकारी क्षण से पैदा हुई एक नयी पहुँच ने ले ली है।"

1920 में 'ऑस्ट्रियाई कम्युनिस्टों को पत्र' में लेनिन ने उनके द्वारा इस आधार पर संसद के बहिष्कार की कार्यदिशा की आलोचना की कि सोवियतों जैसी संस्थाएँ अस्तित्व में आ चुकी हैं। लेनिन लिखते हैं :

"ऑस्ट्रियाई कम्युनिस्ट पार्टी ने बुर्जुआ जनवादी संसद के चुनावों के बहिष्कार का निर्णय लिया है। कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल की दूसरी कांग्रेस ने जो कि हाल ही में सम्पन्न हुई है, चुनावों में कम्युनिस्ट भागीदारी और बुर्जुआ संसदों में गतिविधियों को सही रणकौशल के रूप में मान्यता दी है...

"ऑस्ट्रियाई सामाजिक जनवादी बुर्जुआ संसद में वैसा ही बर्ताव कर रहे हैं जैसाकि अपने प्रेस समेत अपने कार्य के हर क्षेत्र में कर रहे हैं, यानी कि ऐसे टटपुँजिया जनवादियों के समान जो कि केवल रीढ़विहीन ढुलमुलपन के काबिल होते हैं, जबकि वास्तव में वे पूँजीपति वर्ग पर पूरी तरह से निर्भर होते हैं। **हम कम्युनिस्ट बुर्जुआ संसदों में इसलिए प्रवेश करते हैं ताकि उन्हीं के मंचों से इन पूर्ण रूप से भ्रष्ट पूँजीवादी संस्थाओं द्वारा व्यवहार में लायी जाने वाली धोखेबाज़ी को बेनक़ाब कर सकें, जो कि मज़दूरों और समस्त मेहनतकश जनता को मूर्ख बनाती हैं।**"

आगे लेनिन स्पष्ट करते हैं कि क्रान्तिकारी परिस्थिति के अपवाद को छोड़कर हर सूरत में बहिष्कार की नीति ग़लत है और वास्तव में संसद और पूँजीवादी चुनावों में रणकौशलात्मक हस्तक्षेप के बिना इस बात की गुंजाइश ही कम है कि क्रान्तिकारी परिस्थिति पैदा होगी। इसी पत्र में लेनिन लिखते हैं :

"जब तक हम कम्युनिस्ट राज्य सत्ता पर क़ब्ज़ा करने और फिर चुनाव आयोजित करने में अक्षम हैं, जिसमें कि हम केवल जनता के साथ काम करेंगे जो कि बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध अपनी सोवियतों के लिए वोट डालेगी; जब तक कि बुर्जुआ वर्ग राज्य सत्ता को चला रहा है और आबादी के विभिन्न वर्गों को चुनावों में हिस्सा लेने के लिए आमन्त्रित कर रहा है, हमारा कर्तव्य है कि हम इन चुनावों में, महज़ सर्वहारा वर्ग के बीच नहीं बल्कि समस्त मेहनतकश जनता के बीच प्रचार आयोजित करने के उद्देश्य से हिस्सा लें। जब तक कि बुर्जुआ संसद मज़दूरों को धोखा देने का ज़रिया बनी रहती है, और वित्तीय जालसाज़ी और हर प्रकार की घूसखोरी... पर पर्दा डालने के लिए जब तक "जनवाद" के जुमलों का इस्तेमाल किया जाता है, तब तक हम कम्युनिस्ट कर्तव्यबद्ध तौर पर इसी संस्था में रहने के लिए बाध्य हैं...ताकि हम बिना थके इस धोखे को बेनक़ाब कर सकें...संसद में ही बुर्जुआ पार्टियों व ग्रुपों के बीच के सम्बन्ध सबसे अधिक बारंबारता के साथ अपनेआप को प्रकट करते हैं और साथ ही बुर्जुआ समाज के सभी वर्गों के बीच के सम्बन्धों को भी दिखलाते हैं। इसीलिए बुर्जुआ संसद में ही, इसके भीतर से, हम कम्युनिस्टों को वर्गों और पार्टियों के बीच के सम्बन्धों

(पेज 10 पर जारी)

चुनावों में रणकौशलात्मक हस्तक्षेप की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट कार्यदिशा क्या है?

(पेज 9 से आगे)

की सच्चाई को, और खेत मज़दूरों के प्रति भूस्वामियों के, ग़रीब किसानों के प्रति अमीर किसानों के, कर्मचारियों और छोटे मालिकों आदि के प्रति बड़ी पूँजी के रवैये की सच्चाई को जनता को बताना चाहिए।"

इसी लेख में लेनिन ऑस्ट्रियाई कम्युनिस्टों की इस दलील को खारिज करते हैं कि चूँकि उन्होंने सोवियतों के समान मज़दूर परिषदों का निकाय बना लिया है इसलिए वे संसद में जाने की आवश्यकता को नहीं मानते हैं। लेनिन लिखते हैं :

"मैं इस दलील को ग़लत मानता हूँ। जब तक कि हम बुर्जुआ संसद को भंग करने में अक्षम हैं, हमें इसके भीतर से और साथ ही बाहर से भी इसके ख़िलाफ़ काम करना चाहिए। जब तक मेहनतकश जनता (केवल सर्वहारा नहीं, बल्कि अर्द्धसर्वहारा और छोटे किसान भी) की एक विचारणीय संख्या का उन बुर्जुआ जनवादी उपकरणों में अभी भरोसा है जिनका इस्तेमाल बुर्जुआ वर्ग मज़दूरों को धोखा देने में करता है, तब तक हमें इस धोखेबाज़ी का ठीक उसी मंच से पर्दाफ़ाश करना चाहिए जिसे मज़दूर वर्ग के पिछड़े हिस्से, और विशेष तौर पर गैर-सर्वहारा मेहनतकश जनता, सबसे महत्वपूर्ण और प्राधिकारसम्पन्न मानते हैं।"

1920 में ही 'संसदवाद के बारे में' नामक अपने भाषण में लेनिन ने स्पष्ट किया कि मज़दूर वर्ग समेत समूची जनता में कुछ उन्नत तत्व होते हैं, लेकिन एक अच्छी-ख़ासी आबादी राजनीतिक रूप से पिछड़े तत्वों की भी होती है। ऐसे तत्व संसद को सबसे अहम राजनीतिक निकाय मानते हैं और यह मानते हैं कि वह जनता की इच्छा का प्रतिनिधित्व करती है। उन्हें महज़ राजनीतिक प्रचार से इस संस्था की ऐतिहासिक अप्रासंगिकता पर सहमत नहीं किया जा सकता है। इसके लिए उनके सामने व्यवहार में यह साबित करने की आवश्यकता होती है कि संसद आम मेहनतकश जनता की इच्छा को अभिव्यक्ति या प्रतिनिधित्व नहीं देती है। लेनिन लिखते हैं :

"सभी पूँजीवादी देशों में मज़दूर वर्ग के भीतर पिछड़े तत्व होते हैं जो कि इस बात पर सहमत होते हैं कि संसद जनता की सच्ची प्रतिनिधि है और उन बेईमान तौर-तरीक़ों को नहीं समझ पाते हैं जो कि वहाँ अपनाये जाते हैं। आप कहते हैं कि संसद वह उपकरण है जिसकी मदद से बुर्जुआ वर्ग जनसमुदायों को धोखा देता है, लेकिन इस तर्क को ही आपके ख़िलाफ़ इस्तेमाल किया जाना चाहिए और यह वास्तव में आपकी थीसिस के ख़िलाफ़ ही जाता है। आप वास्तव में पिछड़े जनसमुदायों के समक्ष संसद के सच्चे चरित्र को कैसे उजागर करेंगे, जिन्हें बुर्जुआ वर्ग द्वारा ठगा जाता है? आप तमाम संसदीय दाँवपेचों या विभिन्न पार्टियों की अविस्थितियों को किस प्रकार बेनक़ाब करेंगे, अगर आप संसद में ही नहीं हैं, और अगर आप संसद के बाहर बने रहते हैं? अगर आप मार्क्सवादी हैं तो आपको मानना ही होगा कि पूँजीवादी समाज में वर्गों के सम्बन्धों और पार्टियों के सम्बन्धों के बीच करीबी रिश्ता होता है। मैं फिर से दुहराता हूँ, आप ये सब कैसे दिखलायेंगे अगर आप संसद के सदस्य नहीं है, और आप संसदीय कार्रवाई को ही त्याग देते हैं? रूसी क्रान्ति के इतिहास ने साफ़ तौर पर दिखलाया है कि मज़दूर वर्ग के जनसमुदायों, किसानों और निम्न कार्यालय कर्मचारियों को किन्हीं भी तर्कों से सहमत नहीं किया जा सकता है, अगर उनके स्वयं के अनुभवों ने उन्हें सहमत नहीं किया होता।"

इसी भाषण में लेनिन आगे कहते हैं :

"यहाँ पर यह दावा किया गया है कि संसदीय संघर्षों में हिस्सा लेना समय की बरबादी है। क्या आप किसी दूसरी ऐसी संस्था के बारे में सोच सकते हैं जिसमें सभी वर्ग उसी प्रकार दिलचस्पी रखते हों, जैसे कि वे संसद में रखते हैं? इसे कृत्रिम रूप से पैदा नहीं किया जा सकता है। अगर वे सभी वर्ग संसदीय संघर्ष में शामिल होते हैं, तो ऐसा इसलिए है कि उनके हित और उनके टकराव संसद में प्रतिबिम्बित होते हैं। अगर हर जगह और तत्काल ऐसा सम्भव हो ताकि, मिसाल के तौर पर एक आम हड़ताल करके एक ही चोट में पूँजीवाद को उखाड़ फेंका जाये, तो कई देशों में पहले ही क्रान्ति हो चुकी होती। लेकिन हमें तथ्यों का आकलन करना चाहिए, संसद वर्गसंघर्ष का एक स्थान होता है।"

लेनिन ने संसद में कम्युनिस्टों द्वारा रणकौशलात्मक भागीदारी के विषय में और संसद के बहिष्कार की ग़लत कार्यदिशा के अपने खण्डन के विषय में सबसे विस्तार से अपनी प्रसिद्ध रचना 'वामपंथी कम्युनिज्म: एक बचकाना मर्ज' में लिखा। इस रचना में उन्होंने मुख्य तौर पर डच कम्युनिस्ट पार्टी के वामपंथी भटकाव की आलोचना की थी, जिन्होंने संसद के बहिष्कार की नीति अपनायी थी। लेनिन इस रचना में लिखते हैं :

"आलोचना—सर्वाधिक तीखी, निर्मम, समझौताविहीन आलोचना—की जानी चाहिए, लेकिन संसदवाद या संसदीय गतिविधियों की नहीं बल्कि **उन नेताओं की जो कि संसदीय चुनावों और संसदीय मंच का इस्तेमाल क्रान्तिकारी और कम्युनिस्ट तरीके से करने में अक्षम, या इससे भी महत्वपूर्ण, ऐसा करने के ख़िलाफ़ हैं।**"

लेनिन आगे डच कम्युनिस्टों के इस तर्क का खण्डन करते हैं कि चूँकि पूँजीवादी संसदें ऐतिहासिक तौर पर अप्रासंगिक हो चुकी हैं और चूँकि ऐतिहासिक तौर पर पूँजीवादी संसदों से अधिक उन्नत सोवियत जनवाद की संस्थाएँ पैदा हो चुकी हैं, इसलिए पूँजीवादी संसदों में भागीदारी किसी भी रूप में ग़लत है। लेनिन तर्क देते हैं :

"संसदवाद "ऐतिहासिकरूप से अप्रासंगिक" हो चुका है। यह *प्रचारात्मक अर्थों में* सही है। लेकिन हर कोई जानता है कि व्यवहार में ऐसा होना अभी एक दूर की कौड़ी है। पूँजीवाद को भी – और पूरी वैधता के साथ " आज से कई दशकों पहले ही "ऐतिहासिक रूप से अप्रासंगिक" घोषित किया जा सकता था, लेकिन यह पूँजीवाद के आधार पर ही बहुत लम्बे और दृढ़ संघर्ष की आवश्यकता को कतई समाप्त नहीं करता है। विश्व इतिहास की दृष्टि से संसदवाद "ऐतिहासिक रूप से अप्रासंगिक" हो चुका है, यानी कि सर्वहारा अधिनायकत्व का युग शुरू हो चुका है। इस पर कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है। लेकिन विश्व इतिहास दशकों में गिना जाता है। दस या बीस वर्ष पहले या बाद से कोई फर्क नहीं पड़ता जब कि हम विश्व इतिहास के पैमाने से माप रहें हों; विश्व इतिहास के दृष्टिकोण से यह छोटी-सी बात है जिस पर सन्निकट रूप में भी विचार नहीं किया जा सकता है। लेकिन ठीक इसी कारण से, विश्व इतिहास के पैमाने को व्यावहारिक राजनीतिक पर लागू करना एक सैद्धान्तिक भूल है।

"क्या संसदवाद "राजनीतिक रूप से अप्रासंगिक" है? यह एकदम अलग मामला है। अगर यह सच होता तो "वामपंथियों" की अवस्थिति मज़बूत होती। लेकिन इसे सर्वाधिक गहरे विश्लेषण से सिद्ध किया जाना होगा, और "वामपंथियों" को यह तक नहीं पता है कि इस मुद्दे को कैसे अप्रोच किया जाये। …

"पहली बात तो यह है कि रोज़ा लक्ज़मबर्ग और कार्ल लीब्कनेख्त जैसे शानदार राजनीतिक नेताओं की राय के विपरीत, जर्मन "वामपंथी" जैसा कि हम जानते हैं, जनवरी 1919 में ही संसदवाद को "राजनीतिक रूप से अप्रासंगिक" मानते थे। हम जानते हैं कि"वामपंथी" ग़लत थे। केवल यह तथ्य ही एक ही प्रहार में, इस विचार की धज्जियाँ उड़ा देता है कि संसदवाद "राजनीतिक रूप से अप्रासंगिक" है। यह "वामपंथियों" को सिद्ध करना होगा कि उस दौर में उनकी जो ग़लती निर्विवाद रूप से एक ग़लती थी, अब वह एक ग़लती कैसे नहीं रह गयी है।...

"...जब लाखों की संख्या में और "विशाल भीड़" में सर्वहारा न केवल आम तौर पर संसदवाद के पक्ष में है, बल्कि एकदम "प्रतिक्रान्तिकारी" है, तो आप कैसे कह सकते हैं कि "संसदवाद राजनीतिक रूप से अप्रासंगिक" हो गया है!? यह ज़ाहिर सी बात है कि जर्मनी में संसदवाद अभी राजनीतिक तौर पर अप्रासंगिक नहीं हुआ है। यह स्पष्ट है कि जर्मनी में "वामपंथियों" ने अपनी इच्छा, अपने राजनीतिक-विचारधारात्मक रवैये और वस्तुगत यथार्थ को गड्डमड्ड कर दिया है। क्रान्तिकारियों के लिए ऐसी ग़लती करना सबसे ख़तरनाक किस्म की ग़लती करने के समान है...संसदवाद निश्चित तौर पर जर्मनी के कम्युनिस्टों के लिए "राजनीतिक तौर पर अप्रासंगिक" है; लेकिन यही तो बात है – हमें किसी ऐसी चीज़ को किसी वर्ग, जनसमुदायों के लिए अप्रासंगिक नहीं मान बैठना चाहिए जो कि हमारे लिए अप्रासंगिक हो चुकी है।...

"अगर "लाखों" की संख्या और "विशाल भीड़ों" में नहीं, बल्कि औद्योगिक मज़दूरों की एक अच्छी-खासी बड़ी अल्पसंख्या भी कैथोलिक पादरी वर्ग की अगुवाई के पीछे चलती है – और अगर ग्रामीण मज़दूरों की ऐसी ही अल्पसंख्या जमींदारों और कुलकों का अनुसरण करती है – तो यह साफ़ तौर पर दिखलाता है कि संसदवाद ने जर्मनी में अभी राजनीतिक तौर पर अपना जीवन पूरा नहीं जिया है, कि संसदीय चुनावों में भागीदारी और संसदीय मंच पर संघर्ष में भागीदारी क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग की पार्टी के लिए बाध्यता है, विशेष तौर पर अपने वर्ग के पिछड़े संस्तरों को शिक्षित करने के उद्देश्य से, और अविकसित, दमित और अज्ञानी ग्रामीण जनसमुदायों को जागृत और प्रबोधित करने के उद्देश्य से।"

जैसाकि हम देख सकते हैं, 'वामपंथी कम्युनिज्म: एक बचकाना मर्ज़' में लेनिन ने विस्तार से स्पष्ट किया है कि बुर्जुआ चुनावों, संसद और समूची पूँजीवादी व्यवस्था के ऐतिहासिक रूप से अप्रासंगिक होने पर कोई प्रश्न नहीं है, लेकिन क्या वह राजनीतिक रूप से भी अप्रासंगिक हो गयी है? इसका फ़ैसला इस बात से नहीं होगा कि सर्वहारा वर्ग के उन्नत तत्व और हिरावल पार्टी ऐसा मानते हैं। इसका फ़ैसला इस बात से भी नहीं होगा कि समूचा सर्वहारा वर्ग क्या मानता है। इसका फ़ैसला इस बात से होगा कि समूची मेहनतकश जनता की विशाल बहुसंख्या क्या मानती है, या राजनीतिक चेतना के किस धरातल पर है। व्यापक मेहनतकश जनता राजनीतिक चेतना के उस धरातल पर पहुँचे, इसमें कई वस्तुगत और आत्मगत कारक होतेहैं। एक वस्तुगत कारक होता है पूँजीवादी व्वस्था का संकटग्रस्त होना और इस संकट का बुर्जुआ वर्ग की राज्यसत्ता के राजनीतिक संकट के रूप में प्रकट होना। लेकिन इसके साथ ही कई मनोगत कारक भी इसमें शामिल हैं और इनमें सबसे महत्वपूर्ण यह है कि कम्युनिस्ट बुर्जुआ जनवादी विभ्रमों को व्यापक मेहनतकश जनता के बीच से किस हद तक साफ़ कर सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि तमाम बुर्जुआ जनवादी विभ्रमों में से सबसे महत्वपूर्ण विभ्रम है बुर्जुआ चुनावों और संसद से जुड़ा हुआ विभ्रम; यही वह राजनीतिक प्रक्रिया है जिससे पूँजीपति वर्ग अपना वर्चस्व स्थापित करता है, यानी शासन करने की सहमति निर्मित करता है। नतीजनत, इस विभ्रम का निवारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। लेनिन स्पष्ट करते हैं कि यह कार्य केवल संसद के बाहर के जनसंघर्षों से नहीं हो सकता है, बल्कि बुर्जुआ संसद के भीतर भी एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट विपक्ष की मौजूदगी ही इस ऐतिहासिक रूप से अप्रासंगिक हो चुकी बुर्जुआ जनवादी संस्था को राजनीतिक रूप से भी अप्रासंगिक बना सकती है। और लेनिन इसे एक सामान्य कार्यदिशा के रूप में पेश करते हैं न कि किसी विशिष्ट रूसी स्थिति में पैदा हुई विशिष्ट नीति के रूप में। अन्त में समाहार पेश करते हुए लेनिन लिखते हैं :

"इससे जो नतीजा निकलता है कि वह पूरी तरह से अखण्डनीय है : यह सिद्ध किया जा चुका है कि बुर्जुआ जनवादी संसद में भागीदारी क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग को नुकसान पहुँचाने से कहीं दूर, सोवियत गणतन्त्र की विजय से कुछ सप्ताह पहले भी और ऐसी विजय के बाद भी, वास्तव में पिछड़े जनसमुदायों के समक्ष यह सिद्ध करने में सहायता करती है कि क्यों ऐसी संसदों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए; यह उनके सफलतापूर्वक भंग कर दिये जाने में भी सहायता पहुँचाती है, और बुर्जुआ संसदवाद को "राजनीतिक रूप से अप्रासंगिक" बनाने में भी सहायता पहुँचाती है। इस अनुभव की उपेक्षा करने, जबकि साथ ही कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल से सम्बन्ध का दावा करने, जिसे कि अपने रणकौशल को अन्तरराष्ट्रीय तौर पर (न कि संकीर्ण और केवल राष्ट्रीय रणकौशलों के तौर पर, बल्कि अन्तरराष्ट्रीय रणकौशलों के तौर पर) विकसित करना होता है, का अर्थ है एक गम्भीर ग़लती करना और शब्दोंमें अन्तरराष्ट्रीयतावाद को मान्यता देते हुए, व्यवहार में उसका परित्याग करना।"

जैसाकि हम देख सकते हैं कि पूँजीवादी चुनावों और संसद में कम्युनिस्टों द्वारा रणकौशलात्मक भागीदारी के विषय में लेनिन के विचार एकदम सुदृढ़ और स्पष्ट हैं। अब हम माओ के विचारों की ओर रुख करते हैं, जिनकी दीर्घकालिक लोकयुद्ध की विशिष्ट कार्यदिशा को भारत के और दुनिया के कई देशों के कतिपय "माओवादी" एकमात्र सार्वभौमिक कार्यदिशा के रूप में पेश करते हैं, और यह दावा करते हैं कि लेनिन और तीसरे इण्टरनेशनल द्वारा रणकौशलात्मक भागीदारी की कार्यदिशा पुरानी पड़ चुकी है और चीन की पार्टी द्वारा नवउपनिवेशों व अर्द्धसामन्ती अर्द्धऔपनिवेशिक देशों के लिए तत्काल सशस्त्र संघर्ष, संसद का व चुनावों का बहिष्कार तथा दीर्घकालिक लोकयुद्ध की कार्यदिशा ही एकमात्र सही कार्यदिशा है। अव्वलन तो भारत और भारत सरीखे तथाकथित तीसरी दुनिया के तमाम देश नवउपनिवेश या अर्द्धउपनिवेश हैं ही नहीं, और अगर होते भी तो भी माओ की दीर्घकालिक लोकयुद्ध की नीति एक बेहद विशिष्ट परिस्थिति में सामने आयी थी और यह क्रान्तिकारी जनदिशा का निषेध नहीं थी। आइये माओ के विचारों पर एक संक्षिप्त निगाह डालते हैं।

पूँजीवादी चुनावों व संसद में

(पेज 11 पर जारी)

चुनावों में रणकौशलात्मक हस्तक्षेप की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट कार्यदिशा क्या है?

(पेज 10 से आगे)

कम्युनिस्टों की रणकौशलात्मक भागीदारी के विचारों को जानने के पहले यह समझना ज़रूरी है कि तमाम वामपंथी दुस्साहसवादी संगठन/पार्टियाँ इस विषय में माओ की समझदारी को बुरी तरह से विकृत करती हैं। उनका मानना है कि बुर्जुआ चुनावों तथा संसद के रणकौशलात्मक उपयोग का नारा उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध की विशिष्ट यूरोपीय स्थिति के लिए, जहाँ समाजवादी क्रान्ति का कार्यक्रम लागू होता था, दुरुस्त था, लेकिन यह तथाकथित तीसरी दुनिया के देशों के लिए उपयुक्त नहीं है। इन देशों के लिए, जो कि हमारे वामपंथी दुस्साहसवादियों के लिए या तो अर्द्धसामन्ती-अर्द्धऔपनिवेशिक देश हैं या फिर नवऔपनिवेशिक देश, माओ ने दीर्घकालिक लोकयुद्ध की रणनीति बतायी है और इस रणनीति के साथ बुर्जुआ संसद व चुनावों के रणकौशलात्मक उपयोग का नारा मेल नहीं खाता है। उनके अनुसार, दीर्घकालिक लोकयुद्ध की रणनीति में ही यह दर्ज है कि पहली मंज़िल से ही तत्काल सशस्त्र संघर्ष ही किया जायेगा। ऐसे में, बुर्जुआ संसदें हमारे लिए पूर्ण रूप से बेकार हैं। उनका तो यह भी दावा है कि बुर्जुआ संसदें राजनीतिक रूप से अब अप्रासंगिक हो चुकी हैं। यह पूरी समझदारी ही बेहद अधकचरी, तथ्यात्मक तौर पर ग़लत है।

पहली बात तो यह है कि माओ ने दीर्घकालिक लोकयुद्ध के रास्ते को बुर्जुआ संसद व चुनावों के रणकौशलात्मक उपयोग के आम निषेध के तौर पर नहीं पेश किया था। दूसरी बात यह कि चीन में पार्टी के सामने यह प्रश्न ही नहीं था क्योंकि वहाँ कोई बुर्जुआ संसद थी ही नहीं। तीसरी बात यह है कि जब बुर्जुआ जनवादी शक्तियों ने ऐसे प्रातिनिधिक निकाय को खड़ा करने का प्रयास किया था तो माओ स्वयं उसका अंग बने थे। वास्तव में, सुन यात सेन ने जो प्री-पार्लियामेंट गठित की थी, माओ स्वयं उसके सदस्य थे और माओ ने नेशनल असेम्बली, यानी संसद की माँग रखी थी। 1938 में, यानी कि जब दीर्घकालिक लोकयुद्ध की रणनीति पेश की जा चुकी थी, तब माओ ने एक साक्षात्कार में कहा था: "उस जनवादी गणराज्य में, जिसकी वकालत कम्युनिस्ट पार्टी करती है, संसद को हमारे लोगों द्वारा चुना जायेगा, जो कि औपनिवेशिक ग़ुलामी से इंकार करते हैं। चुनाव बिना किसी रोक-टोक सार्विक मताधिकार पर आधारित होंगे। हमारा राज्य एक जनवादी राज्य होगा। व्यापक रूपरेखा में यह वह राज्य होगा जिसकी स्थापना पर सुन यात-सेन ने काफ़ी पहले बल दिया था। इसी रास्ते पर चीनी राज्य का विकास होना चाहिए।"

1938 में ही चीन की राष्ट्रीय राजनीतिक परिषद के कम्युनिस्ट सदस्यों ने यह घोषणा की थी: "हालाँकि यह परिषद, जिस पद्धति से वह स्थापित की गयी है उसमें भी और अपने संघटन में भी, जनता का निरपेक्ष रूप से प्रातिनिधि निकाय नहीं है...

"...परिषद के कम्युनिस्ट सदस्य इस आधार पर अपनी ज़िम्मेदारी से इंकार नहीं करते हैं कि इस परिषद के सदस्यों को जनता द्वारा नहीं चुना गया है। हमें इस बात का गहराई से अहसास है कि परिषद के सदस्य जनता के सेवक हैं, और नतीजतन, हम चीन की जनता की इच्छाओं, आशाओं और माँगों को पूरा करने के लिए दृढ़ता से संघर्ष करेंगे।"

सच्चाई यह है कि हमारे वामपंथी दुस्साहसवादी जिसे "चीनी पथ" का नाम देते हैं, उसका रणनीतिक बहिष्कार के नारे से कोई लेना-देना नहीं है। वे अपने समर्थन में स्तालिन की उस उक्ति का जिक्र करते हैं, जिसमें उन्होंने दीर्घकालिक लोकयुद्ध की रणनीति को सही ठहराया था और इसे वे कोमिण्टर्न की चुनावों में कम्युनिस्टों की भागीदारी-सम्बन्धी थीसीज़ के निषेध के तौर पर पेश करते हैं। सच्चाई यह है कि चीन में कोई संसद नहीं थी और स्तालिन ने दीर्घकालिक लोकयुद्ध की रणनीति को यह कहकर सही ठहराया था कि चीनी क्रान्ति सशस्त्र प्रतिक्रान्ति का सामना कर रही है। हमारे वामपंथी दुस्साहसवादी इस सारे सन्दर्भ को गोल कर जाते हैं, ताकि तत्काल सशस्त्र संघर्ष और दीर्घकालिक लोकयुद्ध की रणनीति को सर्वहारा क्रान्ति की एकमात्र सार्वभौमिक रणनीति के तौर पर पेश कर सकें और जो भी इससे अलग सोच रखता है, वह उनके लिए संशोधनवादी, दक्षिणपंथी विचलन का शिकार आदि हो जाता है। सच्चाई यह है कि चीनी पार्टी ने हरेक कानूनी चैनल का इस्तेमाल करने का पूरा प्रयास किया, जैसाकि राष्ट्रीय राजनीतिक परिषद के कम्युनिस्ट सदस्यों द्वारा दिये गये, उपरोक्त उद्धृत बयान से स्पष्ट है। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी उस बुर्जुआ निकाय में भी शिरकत कर रही थी, जो कि सीमित मताधिकार पर भी आधारित नहीं था, जैसे कि दूमा या यूरोपीय संसदें।

हमें न सिर्फ यह ऐतिहासिक सन्दर्भ पता होना चाहिए बल्कि चीनी पार्टी के दीर्घकालिक लोकयुद्ध के रास्ते को अपनाने के विशिष्ट ऐतिहासिक सन्दर्भ और तर्कों का भी ज्ञान होना चाहिए, ताकि हम यह समझ सकें कि दीर्घकालिक लोकयुद्ध या 'चीनी पथ' न सिर्फ़ आज भारत और भारत जैसे तमाम देशों में लागू नहीं होता है, बल्कि जब वह जिन देशों में लागू होता था, वहाँ भी वह कोमिण्टर्न और लेनिन की चुनाव में भागीदारी के सन्दर्भ में दी गयी कार्यदिशा का खण्डन नहीं था, बल्कि एक ऐसी स्थिति में लागू की जाने वाली कार्यदिशा थी, जहाँ संसद थी ही नहीं और क्रान्ति और पार्टी को सशस्त्र प्रतिक्रान्ति का शुरुआती मंजिलों से ही सामना करना पड़ रहा था।

आज के दौर में पूँजीवादी चुनावों, संसद व विधानसभाओं में कम्युनिस्टों द्वारा रणकौशलात्मक हस्तक्षेप के लक्ष्य

मार्क्स से माओ तक पूँजीवादी चुनावों और संसद-विधानसभा आदि में कम्युनिस्टों द्वारा रणकौशलात्मक हस्तक्षेप के विषय में पेश विचारों पर चर्चा के बाद अन्त में हम इस रणकौशलात्मक हस्तक्षेप के लक्ष्यों पर विचार करते हुए समाहार कर सकते हैं।

पूँजीवादी व्यवस्था और पूँजीवादी जनवाद को असम्भाव्यता के बिन्दु पर पहुँचाना – जैसा कि हमने उपरोक्त तमाम उद्धरणों में देखा, बुर्जुआ चुनावों और संसद में रणकौशलात्मक हस्तक्षेप का लक्ष्य होता है कि बुर्जुआ संसद व बुर्जुआ जनवाद के क्षरण और विनाश की ऐतिहासिक वस्तुगत प्रक्रिया को मनोगत रूप से बल और गति प्रदान करना, क्योंकि यह प्रक्रिया वस्तुगत तौर पर स्वत:स्फूर्त रूप से पूर्ण नहीं हो सकती है। इसका अर्थ क्या है? इसका अर्थ यह है कि कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी पूँजीवादी जनवाद और उसके प्रातिनिधिक निकाय यानी कि संसद, को उसके असम्भाव्यता के बिन्दु पर पहुँचाने के लिए संसद के भीतर एक सर्वहारा विपक्ष की भूमिका अदा करते हैं। यह काम कई प्रकार से होता है: पहला, साम्राज्यवाद के दौर में चूँकि पूँजीपति वर्ग अपने जनवादी-संवैधानिक वायदों को भी पूरा नहीं कर सकता है, इसलिए उन वायदों और नारों को पूरा करवाने के लिए सतत संघर्ष करना, यानी कि उन वायदों के साथ अति-अभिज्ञान करना और इस प्रक्रिया में पूँजीपति वर्ग द्वारा उनके पूरा होने की असम्भाव्यता को प्रदर्शित करना। दूसरा, कम्युनिस्ट नागरिक अधिकारों की माँग से आगे जाते हैं, जो कि संविधान में औपचारिक तौर पर दर्ज हैं। वे जो माँगें उठाते हैं, वे यदि क़ानूनन कहीं दर्ज न भी हों तो मज़दूर वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व करती हैं, उनके जीवन की ज़रूरत हैं और उनके अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं। इस प्रक्रिया में वे प्रदर्शित करतेहैं कि मज़दूर वर्ग के हितों की पूर्ति या प्रतिनिधित्व पूँजीवादी व्यवस्था और उसके जनवाद के दायरे के भीतर नहीं हो सकता है। केवल इन दोनों क़दमों से ही क्रान्तिकारी पार्टी समाजवादी व्यवस्था और समाजवादी क्रान्ति की आवश्यकता पर सर्वहारा वर्ग और आम मेहनतकश जनता के पिछड़े तत्वों को सहमत कर सकती है, क्योंकि उसे व्यवहार और अनुभव से ही सहमत किया जा सकता है। तीसरा, संसद के भीतर मौजूद कम्युनिस्ट प्रतिनिधि पूँजीवादी समाज की तमाम घटनाओं के ज़रिये समूची पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध राजनीतिक प्रचार करते हैं, समाज में जारी मेहनतकश वर्गों के शोषण, उत्पीड़न का पर्दाफ़ाश करते हैं। साथ ही वे तमाम जनान्दोलनों का समर्थन करते हैं और उनके पक्ष में हस्तक्षेप करतेहैं। इसके ज़रिये पूँजीवादी व्यवस्था की सीमाओं को उजागर किया जाता है और जनसमुदायों के समक्ष इस सच्चाई को लाया जाता है कि मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे के भीतर वे न्याय और समानता की उम्मीद नहीं कर सकते हैं। चौथा, पूँजीवादी संसद और पूँजीवादी सरकार द्वारा पूँजीपति वर्ग के हितों की सेवा के लिए संसद के भीतर जो फैसले लिये जाते हैं, जो सौदेबाज़ियाँ होती हैं, पूँजीपति वर्ग के विभिन्न हिस्सों की नुमाइन्दगी करने वाली पूँजीवादी पार्टियों के बीच जिस रूप में अन्तरविरोधों का निपटारा होता है, और संघर्ष होता है, उसके ज़रिये भी कम्युनिस्ट प्रतिनिधि पूँजीवादी सरकार और संसद और तमाम पूँजीवादी पार्टियों के चरित्र को जनता के सामने उजागर करते हैं। इन सभी कार्यों के लिए पूँजीवादी चुनावों और संसद में सर्वहारा वर्ग के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष की मौजूदगी अनिवार्य है। इन चारों कदमों से कम्युनिस्ट प्रतिनिधि पूँजीवादी व्यवस्था, उसकी संसद, उसके जनवाद की असलियत और उसकी सीमाओं को जनता के सामने उजागर करते हैं।

पूँजीवादी संसद के भीतर एक स्वतन्त्र सर्वहारा राजनीतिक पक्ष की अनिवार्यता – जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, पूँजीवादी संसदें स्वयं वर्ग संघर्ष का एक मंच होती हैं। सर्वहारा वर्ग को यदि अपने विचारधारात्मक व राजनीतिक प्राधिकार तथा वर्चस्व को समाज में व्यापक तौर पर स्थापित करना है, तो उसे वर्ग संघर्ष के हरेक मंच पर अपनी स्वतन्त्र राजनीतिक अवस्थिति के साथ मौजूद होना बेहद आवश्यक होता है। ऐसा न करना वर्ग संघर्ष के उस क्षेत्र को पूँजीवादी वर्चस्वके लिए छोड़ने के समान होता है, जोकि समूचे राजनीतिक वर्ग संघर्ष में सर्वहारा वर्ग की स्थिति को कमज़ोर बनाता है। सर्वहारा वर्ग को अपने वर्ग की राजनीतिक नुमाइन्दगी के कार्य को स्वयं अपने हिरावल के नेतृत्व में अपने हाथों में लेना चाहिए। यह कार्य न तो किसी और पार्टी या दल का समर्थन करके किया जा सकता है और न ही ऐसे दलों से गठजोड़ बनाकर चुनावों में हस्तक्षेप करके किया जा सकता है। इस सूरत में सर्वहारा वर्ग अपनी स्वतन्त्र राजनीतिक अवस्थिति संघटित नहीं कर सकता है और न ही उसे सशक्त बना सकता है। तीसरा, और सबसे महत्वपूर्ण कारण यह है कि यदि सर्वहारा वर्ग की अपनी स्वतन्त्र राजनीतिक अवस्थिति संघटित नहीं होगी तो वह किसी न किसी अन्य वर्ग के राजनीतिक दल और इस रूप में उस वर्ग का पिछलग्गू बनेगा। इसीलिए यह आवश्यक है कि सर्वहारा वर्ग पूँजीवादी संसद और चुनावों के क्षेत्र में भी अपने आपको एक स्वतन्त्र राजनीतिक शक्ति के रूप में संघटित करे और अपनी वर्ग अवस्थिति से वर्ग संघर्ष चलाये।

अपनी शक्तियों का आकलन करना – जैसा कि मार्क्स व एंगेल्स ने स्पष्ट किया था, अपनी शक्तियों का सही आकलन करने के तमाम माध्यमों, जैसे कि कोई हड़ताल, कोई जनान्दोलन आदि के साथ संसद और चुनावों में रणकौशलात्मक भागीदारी भी एक महत्वपूर्ण माध्यम है। यह सच है कि आज पूँजीवादी चुनाव व्यवस्था जिस भ्रष्ट स्थिति में पहुँच गयी है, मात्र चुनावों में प्रदर्शन के आधार पर असंगठित अवस्था में सर्वहारा वर्ग अपनी शक्तियों का सही आकलन नहीं कर सकता है और उसके लिए अन्य कई माध्यमों की आवश्यकता होगी। लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं है कि यह भी एक आवश्यक माध्यम है, जिससे कि सर्वहारा वर्ग और उसका हिरावल अपनी स्थिति का एक आंशिक आकलन कर सकता है।

समाजवादी कार्यक्रम का प्रचार और उसे लोकप्रिय बनाना – एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी संसद या विधानसभाओं में सीटें जीते या न जीते, चुनाव प्रचार की प्रक्रिया की शुरुआत के साथ ही उसे न्यूनतम और अधिकतम समाजवादी कार्यक्रम के प्रचार का एक बहुमूल्य अवसर प्राप्त होता है। आम तौर पर भी आम राजनीतिक प्रचार के ज़रिये समाजवाद के आदर्श और कार्यक्रम का प्रचार किया जाता है। लेकिन यह आम उद्वेलनात्मक भाषा में ही हो सकता है। आम राजनीतिक प्रचार अभियानों में समाजवादी कार्यक्रम को ठोस शब्दों में स्पष्टता के साथ लोकप्रिय बनाने के काम की एक गम्भीर सीमा है। यह सीमा चुनाव प्रचार के दौरान समाजवादी कार्यक्रम के प्रचार और उसे लोकप्रिय बनाने में सामने नहीं आती है। दूसरी बात यह है कि चुनाव प्रचार के दौरान हम जनसमुदायों के राजनीतिक रूप से सक्रिय मस्तिष्क तक अपनी बातें पहुँचाते हैं। हम न सिर्फ अधिकतम कार्यक्रम को जनता के बीच पेश करते हैं, बल्कि हम तात्कालिक तौर पर भी उन माँगों पर राजनीतिक चेतना का स्तरोन्नयन करते हैं जो कि ठोस रूप से आम राजनीतिक माँगें हैं, न कि किसी एक सेक्शन (जैसे कि छात्र-युवा, महिलाएँ ,आदि) या वर्ग की तात्कालिक विशिष्ट माँगें, और वह भी महज़ किसी दूरगामी अमूर्त लक्ष्य के तौर पर नहीं बल्कि मेहनतकश जनता की अपरिहार्य और फ़ौरी माँगों व ज़रूरतों को अभिव्यक्त करने वाली माँगों के रूप में। इस रूप में कम्युनिस्ट चुनाव प्रचार जनता की माँगों को सही तरीके से सूत्रबद्ध और अभिव्यक्त करने और उन्हें समाजवादी कार्यक्रम के ढाँचे में अवस्थित करने में और इस रूप में समूचे समाजवादी कार्यक्रम को उसकी तात्कालिकता और साथ ही उसके दूरगामी अधिकतम कार्यक्रम के रूप में जनता के बीच प्रचारित करने और लोकप्रिय बनाने में कम्युनिस्ट पार्टीकी मदद करता है।

क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के सामाजिक आधार का विस्तार – दुनियाभर में क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टियों द्वारा पूँजीवादी चुनावों व संसद में रणकौशलात्मक हस्तक्षेप का ऐतिहासिक अनुभव इस बात को सिद्ध करता है कि इसके ज़रिये पार्टी के सामाजिक आधारों का विस्तार होता

(पेज 12 पर जारी)

भाजपा-मोदी के अन्धराष्ट्रवाद को बेनक़ाब करो!!

चुनावी जीत के लिए आम सैनिकों की क़ुर्बानी देना और उसे भुनाने की घटिया राजनीति!

– अजय स्वामी

लोकसभा चुनाव प्रचार में भाजपा और नरेन्द्र मोदी चुनाव आयोग को ठेंगा दिखाते हुए सैन्य कार्रवाई और सेना के नाम पर वोट बैंक बटोरने में लगे हुए हैं। उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री आदित्यनाथ से लेकर केन्द्रीय मन्त्री मुख़्तार अब्बास नक़वी तक चुनावी रैलियों में भारतीय सेना को "मोदी जी की सेना" बता रहे हैं। आम सैनिकों के परिवारों और मेहनतकश लोगों को सोचने की ज़रूरत है कि अपने आपको "राष्ट्रभक्त" और "देशभक्त" का तमगा ख़ुद ही देकर इतराने वाली नरेन्द्र मोदी सरकार जब सैनिकों की मौत पर घड़ियाली आँसू बहाती है तो उसकी असलियत क्या होती है। हम सभी जानते हैं कि जब पुलवामा में सीआरपीएफ़ के 42 जवानों ने आंतकी हमले में अपनी जान गँवाई थी, उस समय हर संवेदनशील नागरिक मारे गये जवानों के परिजनों के दुख में शरीक़ था। लेकिन ठीक उसी समय नरेन्द्र मोदी उत्तराखण्ड के कॉर्बेट पार्क में एक फ़िल्म की शूटिंग में व्यस्त थे। आज चुनावी मौसम में शहीदों की लाशों पर वोट माँग रही भाजपा से शहीद के परिवार जन भी ये सवाल उठा रहे हैं कि आख़िर पुलवामा का हमला सम्भव ही कैसे हुआ? सीआरपीएफ़ की माँग के बावजूद सैनिकों को हवाई जहाज़ से भेजने से सरकार क्यों इंकार करती रही? चप्पे-चप्पे पर सुरक्षा वाले रास्ते में विस्फोटकों से लदी कार कैसे पहुँची, आदि। वहीं आज सैनिकों की एयरलिफ़्ट की माँग ठुकराने वाली भाजपा आज चुनावी प्रचार के लिए 200 से ज़्यादा हेलीकॉप्टर और चार्टर्ड प्लेन बुक कर चुकी है, जिसका एक दिन का ख़र्च 10-15 लाख रुपये है। वैसे भी ज़रा सोचिए, मोदी सरकार को सैनिकों की इतनी ही फ़िक्र है तो वह पिछले पाँच वर्षों से 'वन रैंक वन पेंशन' की माँग को स्वीकार करके लागू क्यों नहीं करती? क्या इनकी राष्ट्रभक्ति यही है कि जीवित सैनिकों का कोई मूल्य नहीं लेकिन मृत सैनिकों का है? जीवित रहते सैनिकों की जायज़ माँगों की कोई सुनवाई नहीं है लेकिन जैसे ही वह एक ताबूत में आता है, वैसे ही उस पर राजनीतिक रोटियाँ सेंकने के प्रयास शुरू हो जाते हैं।

पिछले तीन साल से जन्तर-मन्तर पर पूर्व सैनिक संगठन लगातार प्रदर्शन करके बता रहे कि भाजपा सरकार ने 'वन रैंक वन पेंशन' का अपना भ्रामक फ़ार्मुला पेश कर सैनिकों को धोखा देने की कोशिश की है, क्योंकि भाजपा का फ़ार्मुला सैनिकों की माँग को नहीं मानता। यह माँग है 'सेवानिवृत्ति की तिथि चाहे जो भी हो, एक रैंक और समान सेवा अवधि के लिए समान पेंशन। यही न्यायपूर्ण माँग है और इस माँग पर मोदी सरकार सैनिकों को लगातार धोखा दे रही है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि वह देश के मेहनतकश लोगों, ग़रीब किसानों, मज़दूरों, निम्न मध्यवर्गीय लोगों को धोखा दे रही है। यह भूलना नहीं चाहिए कि आम सैनिक यानी सिपाही, नॉन-कमीशण्ड ऑफ़िसर्स, और यहाँ तक कि कई जूनियर कमीशण्ड ऑफ़िसर्स आम ग़रीब किसानों, मेहनतकशों और मज़दूरों के ही बेटे-बेटियाँ होते हैं। वास्तव में, सैनिक की वर्दी के नीचे एक आम ग़रीब किसान या मज़दूर ही होता है। ऐसे में, उनकी यह माँग भी आम मेहनतकशों की माँगों का ही एक हिस्सा है।

वैसे भी मोदी सरकार पाँच साल की अपनी नाकामी को छिपाने, पूँजीपतियों के तलवे चाटने की अपनी हरक़तों के बेनक़ाब होने और भ्रष्टाचार के दलदल में धँसे होने के कारण अब वह चुनावों के ठीक पहले युद्धोन्माद की लहर भड़का रही है। पिछले कई चुनावों के पहले की ही तरह इस चुनाव के पहले भी एक आतंकी हमला हो गया है! 1999 के लोकसभा चुनावों के पहले कारगिल युद्ध हुआ, 2001 में सात राज्यों के विधानसभा चुनावों के पहले संसद पर आतंकी हमला हुआ, उत्तर प्रदेश के पिछले विधानसभा चुनावों के पहले उरी हमला हुआ और अब सत्रहवीं लोकसभा के चुनाव के पहले पुलवामा हमला हो गया! आज भाजपा और पूरा संघ परिवार देश भर में धार्मिक उन्माद और युद्ध उभार की लहर उठाने में लग गया है, ताकि उस लहर पर सवार होकर 2019 में फिर से सत्ता हासिल की जा सके। हम सभी नौजवानों और मेहनतकशों से आह्वान और अपील करते हैं कि इस उन्माद में न फँसें और याद रखें कि किसी भी युद्ध में फ़ायदा हुक्मरानों का होता है और सरहद के दोनों ओर ग़रीब मेहनतकशों के घरों के ही नौजवान मारे जाते हैं। यह युद्धोन्माद और धर्मोन्माद संघ परिवार चुनावों के पहले राजनीतिक लाभ उठाने के लिए भड़का रहा है और इसमें क़तई फँसने की आवश्यकता नहीं है।

मोदीराज में सेना के हाल

मौजूदा समय में देश में लगभग 10,00,000 सैनिक कार्यरत हैं। सभी जानते हैं कि पिछले लम्बे समय से सैनिक सरकारों द्वारा दोयम दर्जे के व्यवहार के ख़िलाफ़ आन्दोलन करते रहे हैं, लेकिन सैनिकों की मौत पर मुनाफ़ा कमाने वाला बिकाऊ मीडिया न तो सैनिकों के बदतर हालात की तस्वीर पेश करता है और न आन्दोलन की कवरेज करता है। अभी हाल ही में बीएसएफ़ जवान तेज़ बहादुर ने वीडियो जारी करके कहा था कि आम जवानों को बेहद घटिया खाना मिलता है। जवान तेज़ बहादुर को सवाल उठाने के कारण बर्ख़ास्त कर दिया गया और मुद्दे को दबा दिया गया। इसके बाद अगर गृह मन्त्रालय की रिपोर्ट पर नज़र डालें तो पता चलता है कि वर्ष 2014 से 2017 तक बीमारी के चलते 3221 जवान और अधिकारियों की मौत हो चुकी है। मोर्चे पर बीमारी के चलते मरने वाले जवानों में सबसे बड़ी संख्या सीआरपीएफ़ के जवानों की है। अलग-अलग मोर्चों पर 1489 जवान अभी तक दम तोड़ चुके हैं। वहीं 2018 में सेनाओं और अर्द्धसैनिक बलों के 104 जवानों ने आत्महत्या कर ली थी। 2017 में 101 जवानों ने आत्महत्या कर ली थी। 2016 में 129 जवानों ने आत्महत्या की थी। इनमें से ज़्यादातर मज़दूरों, किसानों या कुछ मध्यवर्गीय घरों के युवा ही हैं। ऐसे में सही मायने में इन ठण्डी मौतों को अंजाम देने वाली सरकारों और व्यवस्था को हम कठघरे में नहीं खड़ा करते हैं तो सेना के लिए देशभक्ति की बातें सिर्फ़ युद्ध उन्माद और अन्धराष्ट्रवाद की लहर भड़काने के प्रयास से ज़्यादा कुछ नहीं है। भाजपा और संघ की देशभक्ति की पोल तो तभी खुल गयी जब वे इस शोक के समय शवयात्राओं में दाँत निपोरकर फ़ोटो खिंचवाते पाये गये और पीएम नरेन्द्र मोदी ने उस दौर में भी अपनी चुनावी रैलियों में कोई कमी नहीं आने दी। आज के दौर में इन ठण्डी मौतों को अंजाम देने वाली सरकारों और व्यवस्था को हम कठघरे में नहीं खड़ा करते हैं तो सेना के लिए देशभक्ति की बातें सिर्फ़ युद्ध उन्माद और अन्धराष्ट्रवाद की लहर भड़काने के प्रयास से ज़्यादा कुछ नहीं है।

चुनावों में रणकौशलात्मक हस्तक्षेप की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट कार्यदिशा क्या है?

(पेज 11 से आगे)

है। इसका कारण यह है कि यह चुनाव प्रचार समूची मेहनतकश जनता के समक्ष एक सामान्य राजनीतिक कार्यक्रम पेश करने, उस कार्यक्रम के इर्द-गिर्द गोलबन्दी करने और जनसमुदायों को संगठित करने और सेक्शनल माँगों से ऊपर उठकर आम मेहनतकश जनता के प्रतिनिधि और हिरावल के रूप में पार्टी को स्थापित करने में मददगार होता है। इसके अलावा, जनता के समक्ष एक तात्कालिक आम राजनीतिक कार्यक्रम पेश करना जनता के बीच पार्टी की मान्यता, उसकी स्वीकार्यता को स्थापित करने और उसकी व्यावहारिकता की पहचान के लिए अपरिहार्य होता है। चुनावों के अतिरिक्त अन्य कोई भी जनसंघर्ष का रूप पार्टी को यह अवसर कम ही प्रदान कर पाता है। चाहे वह श्रम कानूनोंको लेकर चलाया जाने वाला अभियान हो, रोज़गार के अधिकार को लेकर चलाया जाने वाला अभियान हो या फिर शिक्षा व आवास आदि के मसले पर, ऐसा कोई भी जन अभियान चूँकि एक सामान्य राजनीतिक कार्यक्रम पेश नहीं करता है, इसलिए वह पार्टी को आम तौर पर व्यापक मेहनतकश जनता के नेता और हिरावल के तौर पर अधिक से अधिक बेहद आंशिक रूप में ही स्थापित कर सकता है। वर्गों के क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चे को निर्मित करने और उस मोर्चे के अगुवा के तौर पर पार्टी को स्थापित करने में चुनावों में रणकौशलात्मक भागीदारी का विशेष महत्व है और इसीलिए पार्टी के सामाजिक आधार को विकसित करने में भी इसका अत्यधिक महत्व है।

पार्टी नेतृत्व के उच्चतर शिक्षण व प्रशिक्षण का स्तरोन्नयन करना – लेनिन ने बताया था कि चुनावों में रणकौशलात्मक भागीदारी के साथ एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के समक्ष यह चुनौती भी आ जाती है कि वह अपने तमाम क़ानूनी व क़ानूनेतर कार्यों के बीच किस प्रकार समन्वय करे और पार्टी के क्रान्तिकारी ढाँचे की किस प्रकार हिफ़ाज़त करे। जो नेता इस कार्य में सक्षम सिद्ध नहीं होते, जो नेता संसद में सही राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं कर पाते, जो ऐसा कर तो पाते हैं मगर पार्टी सिद्धान्त की सही तरीके से हिफ़ाज़त नहीं कर पाते, पार्टी को उन्हें हटाकर उन नेताओं को इस कार्य के लिए नियुक्त करना होता है जो कि इन कार्यों को कर सकते हैं। यह एक महत्वपूर्ण परीक्षा है जो कि पार्टी के नेतृत्व को अपने आपको परखने का, अपनी राजनीतिक नेतृत्व क्षमताओं को परखने का, उन्हें विकसित करने और निखारने का अवसर देती है। साथ ही, यह समूची पार्टी को व्यापक मेहनतकश जनता के नेतृत्व के तौर पर भी विकसित होने और निखरने का अवसर भी देती है। जैसाकि लेनिन ने लिखा था कि इसी परीक्षा से गुज़रकर पार्टी यह देखती है कि उसके पास अपनेआप को जनता का नेता कहने का अधिकार है या नहीं।

●

आज के दौर में संसद और पूँजीवादी चुनावों में रणकौशलात्मक भागीदारी से उपरोक्त प्रमुख लक्ष्यों को पूरा करने का प्रयास किया जाना चाहिए। यही मार्क्स से लेकर माओ तक की क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट शिक्षा का सबक है और इसे आज के दौर में इसी रूप में लागू किया जाना चाहिए।

हम 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' को एक ऐसी नयी शुरुआत मानते हैं जो यह उम्मीद पैदा करती है कि संशोधनवादी संसदवादी सड़न और साथ ही "वामपंथी" दुस्साहसवाद और बचकानेपन से अलग एक सही क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट विकल्प और अवस्थिति निर्मित हो सकती है। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का चुनाव घोषणापत्र यह उम्मीद पैदा करता है, जिस पर हम पिछले अंक में चर्चा कर चुके हैं। हमें सूचना है कि चुनावों के बाद भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी अपना सम्पूर्ण कार्यक्रम भी प्रकाशित करेगी। इस कार्यक्रम की एक झलक और उसका एक पूर्वानुमान चुनाव घोषणा-पत्र में मौजूद है, लेकिन जब यह कार्यक्रम अपने सांगोपांग रूप में सामने होगा, तो हम उसकी भी विवेचना करेंगे। अभी मौजूद दस्तावेज़ों और पार्टी के बयानात एक कमोबेश सही अप्रोच और पद्धति को प्रदर्शित कर रहे हैं और हम उम्मीद करते हैं कि इस सही कम्युनिस्ट पहुँच और पद्धति पर भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी अमल करना जारी रखेगी।

अन्त में, **हम 'मज़दूर बिगुल' के पाठकों से यह अपील करेंगे कि यदि आपके इलाके में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का उम्मीदवार मौजूद है, तो एकजुट होकर जारी लोकसभा चुनावों में उसे वोट दें और पूँजीवादी चुनावों में एक स्वतन्त्र मज़दूर पक्ष को खड़ा करने में अपनी भूमिका निभाएँ । साथ ही, इस पार्टी का वालण्टियर बनें और इसे हर प्रकार का सहयोग दें। RWPI सात लोकसभा सीटों से अपने उम्मीदवार खड़े कर रही है: उत्तर-पूर्वी दिल्ली से कॉमरेड योगेश, उत्तर-पश्चिमी दिल्ली से कॉमरेड अदिति, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) से कॉमरेड रमेश, रोहतक (हरियाणा) से कॉमरेड इन्द्रजीत, सन्तकबीर नगर (उत्तर प्रदेश) से कॉमरेड मित्रसेन, उत्तर-पूर्वी मुम्बई (महाराष्ट्र) से कॉमरेड बबन ठोके और अहमदनगर (महाराष्ट्र) से कॉमरेड सन्दीप सकत।**

टेक्सटाइल और तेल मज़दूरों का शानदार संघर्ष और बोल्शेविकों का काम

*प्रसिद्ध पुस्तक 'ज़ार की दूमा में बोल्शेविकों का काम' के कुछ हिस्सों की श्रृंखला में **पाँचवी कड़ी** प्रस्तुत है। दूमा रूस की संसद को कहते थे। एक साधारण मज़दूर से दूमा में बोल्शेविक पार्टी के सदस्य बने **ए. बादायेव** द्वारा क़रीब 100 साल पहले लिखी इस किताब से आज भी बहुत–सी चीज़ें सीखी जा सकती हैं। बोल्शेविकों ने अपनी बात लोगों तक पहुँचाने और पूँजीवादी लोकतन्त्र की असलियत का भण्डाफोड़ करने के लिए संसद के मंच का किस तरह से इस्तेमाल किया इसे लेखक ने अपने अनुभवों के ज़रिए बख़ूबी दिखाया है। यहाँ हम जो अंश प्रस्तुत कर रहे हैं उनमें उस वक़्त रूस में जारी मज़दूर संघर्षों का रोचक वर्णन होने के साथ ही यह दिखाया गया है कि किस तरह मज़दूरों के दमन के लिएराज्यसत्ता खुलकर पूँजीपतियों का साथ देती है। इससे यह साफ़ हो जाता है कि मज़दूरों को अपने हक़ पाने के लिए किसी क़ानूनी भ्रम में नहीं रहना चाहिए बल्कि अपनी एकजुटता और संघर्ष पर ही भरोसा करना चाहिए। इसे पढ़ते हुए पाठकों को लगेगा कि मानो इसमें जिन स्थितियों का वर्णन किया गया है वे हज़ारों मील दूर रूस में नहीं बल्कि हमारे आसपास की ही हैं। 'मज़दूर बिगुल' के लिए इस श्रृंखला को **सत्यम** ने तैयार किया है।*

बजट पारित करने के बाद जून 1914 में राज्य दूमा (संसद) का ग्रीष्मावकाश हो गया। प्रथम विश्व युद्ध के पहले का यह आख़िरी सत्र ऐसे समय में समाप्त हुआ जब पूरे देश में मज़दूर आन्दोलन का ज्वार उठ रहा था।

पहली मई के ज़बर्दस्त प्रदशनों के बाद ओबुखोव के मज़दूरों को दी गयी सज़ाओं के विरोध में हड़ताल की तैयारियाँ की जा रही थीं। नवम्बर 1913 में इन मज़दूरों पर चले पहले मुक़दमे के समय सेंट पीटर्सबर्ग में कई हड़तालें हुई थीं, और अब मई 1914 में अदालत ने ओबुखोव के मज़दूरों को दो महीने जेल की सज़ा सुना दी थी। उनका दोष बस इतना था कि उन्होंने हड़ताल में हिस्सा लिया था। उनकी सज़ा के विरोध में हुई हड़ताल में एक लाख से भी ज़्यादा मज़दूरों ने पूरे जोशो-ख़रोश के साथ हिस्सा लिया था।

सेंट पीटर्सबर्ग के मज़दूरों की अगली राजनीतिक हड़ताल कीव शहर में बेलिस* मामले में बचाव पक्ष के वकील पर चले मुक़दमे, और पाइप कारख़ाने के एक मज़दूर को दी गयी मौत की सज़ा के विरोध में हुई। उस मज़दूर पर कारख़ाने के शॉप मैनेजर की हत्या का आरोप था। जून में हुई हड़ताल में 30,000 मज़दूरों ने भाग लिया।

* बेलिस एक यहूदी क्लर्क था जिस पर अन्धराष्ट्रवादी और कट्टर मज़दूर-विरोधी संगठन 'ब्लैक हंड्रेड' द्वारा गढ़े गये फ़र्ज़ी सबूतों के आधार पर हत्या का मुक़दमा चला था मगर जूरी द्वारा उसे बरी कर दिया गया था। बेलिस की ओर से मुक़दमा लड़ने वाले वकील को भी फ़र्ज़ी मामले में फंसाया गया था।

इझोर्सकी कारख़ाने में हड़ताल

ठीक इसी समय, सेंट पीटर्सबर्ग के अनेक कारख़ानों में लगातार कहीं न कहीं आर्थिक माँगों पर जुझारू संघर्ष जारी थे। इनमें से एक सबसे लम्बी हड़ताल इझोर्स्की कारख़ाने में हुई जिसे नौसेना विभाग चलाता था। आन्दोलन बिजली सप्लाई करने वाले पॉवर स्टेशन में शुरू हुआ जहाँ मज़दूरों ने कई आर्थिक माँगें उठायी थीं। जब इन मज़दूरों में से कई को काम से निकाल दिया गया, तो हड़ताल दूसरे शॉपों में भी फैल गयी, जहाँ मज़दूरों ने मज़दूरी बढ़ाने, आठ घण्टे काम का दिन लागू करने आदि की माँग की। हड़ताल हमारी पीटर्सबर्ग कमेटी की अगुवाई में चल रही थी, और हड़ताली मज़दूरों के बुलावे पर, मैं अलग-अलग कारख़ानों के प्रतिनिधियों से मिलने के लिए कोल्पिनो गया। मीटिंग रात के अँधेरे में एक क़ब्रिस्तान में हुई और यह तय किया गया कि जितने लम्बे समय तक सम्भव हो, दृढ़ता से हड़ताल चलायी जाये।

हड़ताल ने नौसेना में भारी बेचैनी पैदा कर दी थी। कज़्ज़ाक सैनिकों की एक टुकड़ी कोल्पिनो भेज कर कारख़ाने के पास के बैरक में तैनात कर दी गयी थी ताकि "क़ानून-व्यवस्था लागू करने" के लिए तैयार रहे।

अगले दिन मैं कारख़ाने में गया और मैंने पाया कि सैनिक बुलाये जाने को लेकर मज़दूरों में भारी आक्रोश सुलग रहा था। उस दिन हुई मीटिंग में कई मज़दूरों ने जोश और ग़ुस्से से भरे भाषण दिये और सभी मज़दूरों ने संकल्प लिया कि बर्खास्तगी या दमन के बावजूद लड़कर जीत हासिल करेंगे। पार्टी संगठनों ने आर्थिक माँगों को प्रस्तुत करने और चीफ़ मैनेजर की बर्खास्तगी की माँग उठाने वाले पर्चों की तैयारी और उन्हें बाँटने में मदद की। कारख़ानों के मैनेजमेंट ने पर्चे बाँटने से रोकने की कोशिश की और उसके अफ़सरों ने कई जगह मज़दूरों के हाथों से पर्चे छीन लिये। ज़ाहिर है कि इससे मज़दूर और भी उग्र हो गये।

इझोर्स्की कारख़ाने की हड़ताल तीन सप्ताह तक चली और तभी ख़त्म हुई जब मैनेजमेंट ने मज़दूरी बढ़ाने और कई अन्य रियायतें देने का वायदा किया। मैंने इस हड़ताल की चर्चा क्रान्तिकारी उत्साह के इस दौर में एक आर्थिक हड़ताल की सामान्य प्रक्रिया को दिखाने के लिए की है। मज़दूरों और बोल्शेविक पार्टी संगठनों के बीच के करीबी सम्पर्क, बोल्शेविकों के नेतृत्व में मज़दूरों की कार्रवाई और हड़तालों के दमन के लिए सेना को बुलाया जाना उन परिस्थितियों की ख़ासियत थी जिनके तहत मज़दूरों के आर्थिक संघर्ष उस दौर में चल रहे थे।

प्रान्तीय शहरों में हड़तालें

संघर्ष का विकास सेंट पीटर्सबर्ग तक सीमित नहीं था। सेंट पीटर्सबर्ग के सर्वहारा ने जो उदाहरण पेश किया था वह पूरे देश में मज़दूर आन्दोलन को प्रेरित कर रहा था। आर्थिक और राजनीतिक, दोनों तरह की हड़तालें एक शहर से दूसरे शहर तक फैलती जा रही थीं। छोटे शहरों के मज़दूर भी इतने संगठित ढंग से कार्रवाई कर रहे थे जो पहले कभी देखा नहीं गया था और संघर्ष में उनकी दृढ़ता उच्च स्तर की वर्ग चेतना का परिचय दे रही थी। इसलिए, भले ही हड़तालें लगभग हमेशा कुछ ठोस आर्थिक माँगों से जुड़ी होती थीं, लेकिन उनमें राजनीतिक संघर्ष के तत्व भी होते थे।

मॉस्को ज़िले के कपड़ा उद्योग में मई में एक लम्बा विवाद उठ खड़ा हुआ। आन्दोलन की शुरुआत कोस्त्रोमा गुबेर्निया (तहसील जैसा क्षेत्र) में हुई और यह तेज़ी से पास के मॉस्को और व्लादिमीर गुबेर्निया में भी फैल गया जिसमें लगभग एक लाख मज़दूर शामिल थे।

इतनी बड़ी संख्या में कपड़ा मज़दूरों का हड़ताल में भाग लेना एक असाधारण घटना थी, जोकि एक-दूसरे से दूर-दूर स्थित छोटी-छोटी मिलों में काम करते थे। उनकी मुख्य माँग मज़दूरी बढ़ाने की थी, लेकिन अन्य बातों के अलावा, हड़ताली मज़दूर ऐसे पुस्तकालय खोलने की माँग कर रहे थे जहाँ वे 'प्राव्दा', 'प्रॉसवेश्चेन्ये', 'वोप्रोसी स्त्राखोवानिया' (बीमा से जुड़े सवाल) और दूसरे अख़बार व पत्रिकाएँ पढ़ सकें।

बोल्शेविक फ़्रैक्शन ने हड़ताल की अगुवाई की और हर तरह से कपड़ा मज़दूरों की मदद की। दूमा का सत्र समाप्त होते हीख्कोस्त्रोमा गुबेर्निया से चुने गये शागोव ने ज़िले के कारख़ानों का दौरा किया और मज़दूरों का आह्वान किया कि वे संघर्ष जारी रखें। शागोव ने मालिकों के आगे घुटने टेकने की तमाम सलाहों का कड़ा विरोध किया। शागोव का दौरा ऐसे हालात में हुआ जो अब मज़दूर प्रतिनिधियों के लिए आम बात थे। वे जहाँ भी जाते थे, उनके पीछे पुलिस के जासूस लगे रहते थे जो उन घरों में जबरन घुस जाते थे जहाँ वे जाते थे और जिन मज़दूरों से वे बात करते थे उन्हें गिरफ़्तार कर लेते थे।

हड़ताल गर्तियों तक जारी रही, और मज़दूरों के ठोस संगठन और दृढ़ता की बदौलत उसने मालिकों को मज़दूरी बढ़ाने सहित कई समझौते करने के लिए मजबूर कर दिया। मज़दूरों ने लड़ाई का सही समय चुना था क्योंकि मालिकान निज़्नी-नोवगोरोद के आने वाले मेले के लिए तैयार माल इकट्ठा करने में लगे हुए थे।

बाकू के तेल मज़दूरों का संघर्ष

जिस समय मॉस्को ज़िले में टेक्सटाइल मज़दूरों की हड़ताल जारी थी, ठीक उसी समय सुदूर दक्षिण के बाकू शहर में ऐसी घटनाएँ घट रही थीं जो पूरे मज़दर आन्दोलन के लिए बेहद महत्वपूर्ण थीं। बाकू की हड़ताल काफ़ी लम्बी चली और उसे कुचलने के लिए पूँजीपतियों और ज़ारशाही सरकार ने पूरा ज़ोर लगा दिया। इस हड़ताल ने विश्व युद्ध के ठीक पहले सेंट पीटर्सबर्ग के मज़दूरों की ऐतिहासिक कार्रवाई की ज़मीन तैयार कर दी।

बाकू के तेल के कुओं में हुई हड़ताल अपनेआप नहीं हो गयी थी। यह कई महीनों से सावधानी के साथ की गयी तैयारी का नतीजा थी। सभी बड़ी फ़र्मों के मज़दूर प्रतिनिधियों को लेकर बनी मज़दूर कमेटियों ने पार्टी संगठनों के साथ सलाह-मशविरा करके मज़दूरी की माँगों और मज़दूरों की स्थितियों से जुड़े दूसरे सवालों के ब्यौरे तैयार कर लिये थे।

हड़ताल का तात्कालिक कारण तेल के कुओं से लगे ज़िले में प्लेग फैलना था। इस भयंकर बीमारी की तबाही के कारण बाकू के मज़दूरों की रिहायशी की दयनीय स्थितियों का सवाल सबके सामने आ गया। बाकू की स्थितियों की जाँच करने वाले वैज्ञानिकों ने बयान दिया कि उन्होंने इतने बुरे हालात कहीं भी नहीं देखे थे – भारत में भी नहीं, जहाँ प्लेग उस समय स्थायी तौर पर फैला रहता था।

आवास का सवाल पहले भी बार-बार उठाया जाता रहा था, और पिछली हड़तालों का ध्यान करके तेल कम्पनियों के मालिक कई बार मज़दूरों के लिए ढंग से रहने लायक़ मकान बनाने का आश्वासन दे चुके थे। लेकिन जैसे ही मज़दूरों का आन्दोलन ढीला पड़ता था, वे फ़ौरन अपने वादे भूल जाते थे।

मई 1914 में प्लेग फैलने के तुरन्त बाद, तेल मज़दूरों की ट्रेड यूनियन ने मालिकों की एसोसिएशन के सामने मकानों का सवाल उठाया। एसोसिएशन ने इस मामले में कुछ भी करने से इंकार कर दिया और साथ ही कई मज़दूरों को गिरफ़्तार भी कर लिया गया। तत्काल कई हल्कों में हड़ताल शुरू हो गयी और जल्द ही इसने आम हड़ताल का रूप ले लिया। करीब 50,000 मज़दूर इसमें शामिल थे जो पार्टी के साथ करीबी सम्पर्क रखने वाली हड़ताल कमेटी की अगुवाई में लड़ रहे थे। कमेटी माँगपत्र जारी करती थी, हड़ताल कोष जुटाने का इन्तज़ाम करती थी और दूसरे ज़रूरी क़दम उठाती थी। मज़दूरों ने माँगों की एक लम्बी सूची पेश की जिसमें 60 से भी ज़्यादा मुद्दे थे। इनमें ख़ास थे : मज़दूरी में बढ़ोत्तरी, बेहतर आवास और भोजन, वेतन से कटौतियों का ख़ात्मा, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, चिकित्सा सहायता, आदि। मज़दूरों के कुछ हिस्सों ने आठ घण्टे के दिन और पहली मई को मज़दूरों की छुट्टी घोषित करने की माँग भी उठायी।

इन माँगों में से कई राजनीतिक प्रकृति की माँगें थी, यह बात हमारे पार्टी संगठनों के लम्बे काम और उनके प्रभाव का नतीजा था। कटौतियों के ख़ात्मे की माँग का ज़िक्र करना ज़रूरी है। मज़दूर इस प्रणाली के विरुद्ध आवाज़ उठा रहे थे, जिसके ज़रिए मालिकान मज़दूरों को काबू में रखते थे। यह बाकू के मज़दूरों की वर्ग चेतना ऊँची होने का प्रमाण था। मज़दूरों के बीच कई नस्लों के लोग थे – रूसी, आर्मेनियाई, फ़ारसी और तातार – लेकिन पूँजीपतियों के विरुद्ध लड़ाई में उनके बीच लगभग 100 प्रतिशत एकजुटता थी।

तेल कम्पनियों के मालिकों ने सारी माँगों को सीधे खारिज कर दिया और हड़ताल तोड़ने के लिए सारे हथकण्डे अपनाने पर आमादा हो गये। जब मालिकों द्वारा तय समयसीमा के भीतर मज़दूर काम पर नहीं लौटे, तो उन्हें काम से निकाल दिया गया। उनके पासपोर्ट पुलिस को सौंप दिये गये और उन्हें अपनी अँधेरी कोठरियों को खाली करने का आदेश दे दिया गया। (रूस में उस समय पासपोर्ट के बिना देश के भीतर भी आने-जाने की मनाही थी।) अदालत ने भी फ़ौरन मालिकों की मदद की और तेल के कुओं के इलाक़े में रहने वाले मज़दूरों की बेदखली का हुक्म जारी कर दिया। अफ़सरों ने कोई कसर नहीं छोड़ी – मज़दूरों की बैरकों से बिस्तर उठा ले गये, चूल्हे तोड़ दिये, बिजली-पानी की सप्लाई काट दी गयी।

पुलिस मालिकों से भी ज़्यादा मुस्तैद थी। बाकू को एक सैनिक छावनी में बदल दिया गया और "आन्तरिक दुश्मन" से लड़ने के लिए घुड़सवार कज़्ज़ाक सैनिकों की छह टुकड़ियाँ वहाँ तैनात कर दी गयीं। ट्रेड यूनियन को कुचल दिया गया, सभी सक्रिय सदस्य गिरफ़्तार कर लिये गये और मज़दूरों की सभी मीटिंगों पर पाबन्दी लगा दी गयी। मार्शल लॉ घोषित कर दिया गया और रात 8 बजे के बाद किसी को बाहर निकलने की इजाज़त नहीं थी।

जून के अन्त में बाकू के मज़दूरों ने एक विरोध प्रदर्शन आयोजित किया जिसमें 20,000 से ज़्यादा लोग शामिल हुए। मज़दूरों की माँगों की तख्तियाँ लिये हुए प्रदर्शनकारी तेल मालिकों की एसोसिएशन के हेडक्वाटर की ओर बढ़ रहे थे। पुलिस मज़दूरों की भीड़ से निपटने में नाकाम रही तो घुड़सवार सैनिकों को बुलाया गया जिन्होंने मज़दूरों को घेर कर तितर-बितर कर दिया। करीब सौ मज़दूरों को एक अहाते में धकेलकर गिरफ़्तार कर लिया गया। केंद्रीय जेल में पहले से सैकड़ों क़ैदी थे; कोठरियाँ भरी हुई थीं और जेल का अहाता मज़दूरों से ठसाठस भरा था। शहर के गवर्नर ने मालिकान को चेतावनी दी थी कि वे फ़ैक्ट्री कमेटियों के गठन, पहली मई की छुट्टी, सबको शिक्षा

(पेज 14 पर जारी)

टेक्सटाइल और तेल मज़दूरों का शानदार संघर्ष और बोल्शेविकों का काम

(पेज 13 से आगे)

जैसी ग़ैर-आर्थिक माँगें मानना तो दूर, उन पर पर बातचीत भी नहीं कर सकते हैं। लेकिन इस चेतावनी की कोई ज़रूरत नहीं थी। मालिकों को किसी भी तरह की माँग मानने का कोई इरादा नहीं था।

हड़ताल के आगे बढ़ने के साथ ही इसने पूरे देश का ध्यान अपनी ओर खींचा। एक ओर मालिकान और ज़ारशाही सरकार, और दूसरी ओर मज़दूर वर्ग, बेसब्री से संघर्ष की प्रगति पर नज़र रखे हुए थे। बाकू में तेल का उत्पादन अब लगभग पूरी तरह बन्द हो चुका था, और तेल की कमी से कई औद्योगिक संगठनों, ख़ासकर जहाज़ों के मालिकों को चिंता होने लगी थी क्योंकि उनके जहाज़ों को खड़ा करना पड़ सकता था।

ज़ारशाही सरकार का "शान्तिदूत"

ज़ारशाही सरकार ने तय किया कि स्थानीय अधिकारियों द्वारा उठाए गए क़दम बहुत हल्के हैं और सहायक गृह मंत्री, जरनल जुंकोव्स्की को ज़ार के विशेश आदेश पर बाकू भेजा गया। उसे पूर्ण शक्तियां दी गयी हैं और पुलिस विभाग का प्रमुख भी उसके साथ गया।

उनके पहुँचते ही, दमनतंत्र और तेज़ी से चलने लगा। जनरल ने अख़बारों में हड़तालों की ख़बर देने पर रोक लगा दी, हड़ताल से सम्बन्धित सभी टेलीग्रामों पर सेंसरशिप लागू कर दी, बाकू भेजे जाने वाली सभी धनराशियों की जाँच करायी और हड़तालियों को भेजे गयी सभी राशियाँ ज़ब्त कर लीं। संक्षेप में, जुंकोव्स्की ने "शान्ति बहाली" के लिए अपनी पूरी ताक़त झोंक दी। ज़ारशाही सरकार बाकू के मज़दूरों के दृढ़ प्रतिरोध को तोड़ डालने के लिए तेल कम्पनियों के मालिकों के साथ डटकर खड़ी थी।

सेंट पीटर्सबर्ग के मज़दूरों का करारा जवाब

इन क़दमों ने रूसी मज़दूरों, और सबसे बढ़कर, सेंट पीटर्सबर्ग के सर्वहारा के आक्रोश को भी बढ़ाया। बाकू के मज़दूरों ने दूमा धड़े से सहयोग की अपील की और हमने मज़दूरों के समर्थन में सेंट पीटर्सबर्ग में एक प्रदर्शन आयोजित किया।

पुलिस विभाग के डायरेक्टर को भेजी अपनी रिपोर्ट में, खुफ़िया पुलिस ने सेंट पीटर्सबर्ग के मज़दूरों की कार्रवाई को संगठित करने में हमारी पार्टी के काम का काफ़ी हद तक सही वर्णन किया :

बाकू के तेल क्षेत्रों में हड़ताल इत्तेफ़ाक़ से (?) ऐसे समय में हुइ जब क्रान्तिकारी भूमिगत मण्डलियों की गतिविधियाँ तेज़ हो रही थीं जोकि आने वाले महीनों में होने वाली अन्तरराष्ट्रीय सोशलिस्ट कांग्रेस के लिए मज़दूरों के बीच प्रचार में लगी हुई थीं। उन्हें इस हड़ताल से आन्दोलनात्मक प्रचार चलाने और मज़दूरों को गड़बड़ी के लिए उकसाने का एक बहाना मिल गया और सोशलिस्ट पार्टियों के प्रतिनिधियों ने इस मौक़े का लाभ उठाकर अपने संगठन का काम तेज़ कर दिया ताकि कांग्रेस के लिए प्रतिनिधियों के चुनाव की तैयारी की जा सके।

आगे इस रिपोर्ट में उस समय किये गये प्रचार का ज़िक्र किया गया है :

क़ानूनी सामाजिक-जनवादी अख़बारों में प्रकाशित भड़काऊ क़िस्म के नियमित बुलेटिनों के अलावा, भूमिगत संगठनों के नेताओं ने ऐसे निर्देश जारी किये कि बाकू हड़ताल के महत्व के बारे में मज़दूरों की सभी मीटिंगों में चर्चा की जाये। उम्मीद की जा रही थी कि वर्तमान शासन में मज़दूरों के हालात पर चर्चा करने से मज़दूर वर्ग के दायरों में क्रान्तिकारी भावनाएँ जागेंगी और समाजवाद के आदर्श में मज़दूरों की दिलचस्पी बढ़ाने में मदद मिलेगी।

करीबी निगरानी से पता चला है कि इस काम के मुख्य एजेंट सामाजिक-जनवादी दूमा धड़े के सदस्य बादाएव और उसके साथ काम करने वाले विभिन्न पार्टी सदस्य हैं। उपरोक्त दूमा प्रतिनिधि और उससे जुड़े लोग ज्ञानवर्धक भ्रमण की आड़ में शहर के बाहरी इलाक़ों में मज़दूरों की मीटिंगें करते हैं। इन मीटिंगों में, आने वाली सोशलिस्ट कांग्रेस के लक्ष्यों और कार्यभारों के बारे में विस्तार से बताया जाता है, बाकू की हड़ताल पर चर्चा होती है, और मज़दूरों के अलग-अलग समूहों के बीच एकजुटता क़ायम करने पर ज़ोर दिया जाता है तथा हड़ताल के नैतिक और भौतिक समर्थन के तरीक़ों पर बात होती है।

जल्द ही बाकू के मज़दूरों के लिए बड़े पैमाने पर चन्दा इकट्ठा किया जाने लगा जिसे हमारे फ़्रैक्शन के पास भेजा जाता था। कई कारख़ानों के मज़दूर अपनी पगार का एक निश्चित हिस्सा देते थे और 'प्राव्दा' अख़बार नियमित रूप से मिले हुए धन की सूचियाँ प्रकाशित करता था और साथ ही सहयोग की अपील भी जारी करता था। अफ़सरों और उन्नत मज़दूरों को भी समझ आ गया था कि सहायता की अपील भी क्रान्तिकारी प्रचार का एक तरीक़ा था।

सेंट पीटर्सबर्ग के मज़दूरों का क्रान्तिकारी जोश बढ़ने के साथ ही, बाकू के मज़दूरों के लिए चन्दा जुटाने से रोकने की कोशिश होने लगी। सेंट पीटर्सबर्ग शहर के गवर्नर ने आदेश जारी किया कि "शान्ति और क़ानून-व्यवस्था के विपरत उद्देश्यों, जैसे हड़तालियों व निर्वासितों की मदद, सरकार द्वारा लगाये जुर्माने भरने, आदि के लिए किसी भी साधन से" सहयोग इकट्ठा करने की मनाही है। साथ ही अख़बारों में ऐसे सहयोग की अपील प्रकाशित करने की भी मनाही कर दी गयी और इस आदेश का उल्लंघन करने पर 500 रूबल का जुर्माना या तीन महीने तक की सज़ा घोषित की गयी।

'प्राव्दा' ने गवर्नर के आदेश को पहले पन्ने पर प्रमुखता से प्रकाशित किया और उसके ठीक नीचे बड़े अक्षरों में मेरा पता और आने वालों (यानी हड़तालियों के लिए सहयोग लाने वालों) से मिलने का समय छाप दिया। चन्दा जुटना कम नहीं हुआ बल्कि और बढ़ गया। आदेश ने बाकू के मज़दूरों के लिए सहयोग जुटाने के प्रयास और तेज़ करने के संकेत का काम किया।

बाकू की हड़ताल के हर दिन के साथ उसके समर्थन में सेंट पीटर्सबर्ग में अभियान तेज़ होता गया। हड़तालियों की बेदखली, शहरनिकाले और गिरफ़्तारियों की ख़बरों के बाद सेंट पीटर्सबर्ग के मज़दूरों ने जून के अन्तिम दिनों में इसके विरोध में हड़तालें कीं। आन्दोलन की शुरुआत धीमी रही और कुछ ही कारख़ानों में इसका असर हुआ। लेकिन हमारे सभी पार्टी संगठन आन्दोलन को फैलाने और व्यापक कार्रवाई की तैयारी करने में उत्साह के साथ जुट गये।

लेकिन खुफ़िया पुलिस भी सक्रिय थी। बड़े पैमाने पर गिरफ़्तारियाँ की गयीं और सभी मज़दूर सोसायटियों के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया गया। उन्होंने पहले मज़दूर शिक्षा सोसायटियों पर ध्यान दिया और सैंप्सोनिएव्सकी मार्ग पर स्थित संगठन को ध्वस्त कर दिया। उस परिसर से करीब 40 लोग गिरफ़्तार किये गये जिनमें से ज़्यादातर पार्टी के सदस्य थे। पुलिस लगभग हर रोज़ दूसरी सोसायटियों पर छापे मारने लगी।

गृहमंत्री मकलाकोव से मुलाक़ात

इन छापेमारियों के बाद, मैंने गृहमंत्री, मकलाकोव से मिलने का समय माँगा। उसने अगले दिन सुबह मुझे बुलाया। मंत्री के घर के बाहर और भीतर वर्दीधारी और सादे कपड़ों में पुलिस वालों की कड़ी निगरानी थी। मकलाकोव को ज़ार की पत्नी की ओर से नामांकित किया गया था और वह अपनी वफ़ादारी साबित करने की पूरी कोशिश करता था। उसने पहले ही सभी मज़दूर वर्गीय संगठनों को नष्ट करने की तैयारियाँ कर रखी थीं और छापेमारी में गिरफ़्तार लोगों को रिहा करने से साफ़ इंकार कर दिया। उसने पुलिस का यह आरोप दोहराया कि वहाँ एक ग़ैर-क़ानूनी पुस्तकालय बरामद हुआ था। जब मैंने इस बात पर ज़ोर दिया कि पुलिस की मनमानी रुकनी चाहिए तो उसने घुमा-फिराकर बातों को टाल दिया।

"जिस तरह आपने अपनी पार्टी की शपथ ली है वैसे ही हमने ज़ार के प्रति शपथ ली है और अब उनकी सेवा कर रहे हैं," मकलाकोव ने कहा, "और हम क्रान्तिकारी आन्दोलन से निपटने के लिए सभी ज़रूरी क़दम उठा रहे हैं।"

फिर उसने मुझे यह दिखाने की कोशिश की कि उसे हमारे संगठन के कामों की कितनी अच्छी जानकारी है। उसने कहा, "मुझे पता है कि आप लोग अंडरग्राउंड काम चला रहे हो, पर्चे छपवाकर बँटवा रहे हो।" उसने अपनी मेज़ की दराज से ताज़ा छपा हुआ एक पर्चा निकाला।

यह पर्चा दो दिन पहले मेरे मकान पर तैयार किया गया था और पिछली रात को ही छापा गया था। ज़ाहिर था कि मकलाकोव ने मुझसे मुलाकात की तैयारी में खुफ़िया पुलिस को हमारी ग़ैर-क़ानूनी गतिविधियों के कुछ सबूत जुटाने का आदेश दिया था। वह साबित करना चाहता था कि खुफ़िया पुलिस की चौकन्नी निगाहों से कुछ बच नहीं सकता, और वह पर्चा सम्भवत: हमारे बीच घुसे एक एजेंट से हासिल किया गया था।

मैंने ऐसा दिखाया जैसे मैं उस पर्चे के बारे में कुछ नहीं जानता हूँ लेकिन मुझे लग गया था कि अब बातचीत जारी रखने का कोई फ़ायदा नहीं है। चलते हुए मैंने कहा, "हम अब दफ़्तर में बैठकर आपसे बात नहीं करेंगे, मज़दूर वर्ग अब मौजूदा सत्ता के विरुद्ध सीधे संघर्ष में सड़कों पर इस सवाल को हल करेगा।"

मकलाकोव के दम्भभरे दावों और पुलिस की पुरज़ोर कोशिशों के बावजूद, सरकार क्रान्तिकारी आन्दोलन के विकास को रोकने में नाकाम रही और कुछ ही सप्ताह में वह इतने बड़े पैमाने पर फैल गया जैसा पहले कभी नहीं था।

क्या आप जानते हैं?

मोदी सरकार के चहेते अनिल अम्बानी पर कुल कितना क़र्ज़ है? एक-दो साल पहले अनिल धीरूभाई अम्बानी ग्रुप (ADAG) के ऊपर कुल क़र्ज़ का बोझ 1 लाख 3 हज़ार 158 करोड़ रुपये का था! लेकिन हाल में आयी 'आज तक' की एक रिपोर्ट बताती है कि अनुमानों के मुताबिक सितम्बर, 2018 तक अनिल अम्बानी की कम्पनी पर क़र्ज़ बढ़कर क़रीब 1 लाख 72 हज़ार करोड़ रुपये तक पहुँच चुका था। एक ऐसी कम्पनी जो सम्भवतः देश की सबसे बड़ी क़र्ज़दार कम्पनी है, जिसकी हालत यह है कि एरिक्सन कम्पनी को 550 करोड़ भी चुका नहीं पा रही थी और अदालत में ख़ुद को दिवालिया बता रही थी, उसे रॉफेल का ऑफसेट पार्टनर बनाने के लिए मोदी सरकार ने रक्षा मंत्रालय की सारी सिफ़ारिशों को धता बताकर दिल्ली-पेरिस एक कर दिया। ...तब भी लोग उन्हें ही ईमानदार बता रहे हैं कमाल है ना?

– गिरीश मालवीय

क्या आप जानते हैं?

पिछले 10 वर्षों में बैंकों ने 7 हज़ार करोड़ से भी ज़्यादा के क़र्ज़ बट्टे खाते में डाल दिये! इनमें से 80% से भी ज़्यादा क़र्ज़ पिछले पाँच वर्ष में 'राइट ऑफ़' किये गये!

रिज़र्व बैंक के अनुसार बैंकों ने अप्रैल से लेकर दिसम्बर 2018 तक 1,56,702 करोड़ रुपये के क़र्ज़ 'राइट ऑफ़' कर दिये, यानी बट्टे खाते में डाल दिये। सरकार समय-समय पर बैंकों को उनका घाटा पूरा करने के लिए रकम उपलब्ध कराती रहती है, जिससे डूबे हुए क़र्ज़ों को बट्टे खाते में डालने का काम बैंक और भी मुस्तैदी से करने लगे हैं। 'इंडियन एक्सप्रेस' अख़बार को रिज़र्व बैंक ने बताया कि अप्रैल 2014 के बाद से माफ़ किये गये कुल क़र्ज़ 5,55,603 करोड़ तक पहुँच गये हैं। 2016-17 में बैंकों ने 1,08,374 करोड़ और 2017-18 में 161,328 करोड़ के क़र्ज़ माफ़ किये। 2018-19 के पहले छह महीने में उन्होंने 82,799 करोड़ के कर्ज़ माफ़ किये। 2018 की आख़िरी तिमाही में ऐसे क़र्ज़ों की मात्रा 64,000 करोड़ हो गयी।

पिछले साल सरकार ने बैंकों का घाटा पूरा करने के लिए 2.11 लाख करोड़ का पैकेज घोषित किया था। लेकिन इसके बावजूद इस समय बैंकों के पास 10 लाख करोड़ का एनपीए, यानी डूबे हुए क़र्ज़ इकट्ठा हो चुके हैं और निकट भविष्य में फिर से बैंकों को भारी रकम का पैकेज दिया जा सकता है। कहने की ज़रूरत नहीं कि ये लाखों करोड़ की रकम मोदी का सूट बेचकर या अमित शाह के बैंक से निकालकर नहीं दी जाती है। यह रकम जनता की गाढ़ी कमाई से वसूले टैक्सों से दी जाती है। यानी यह भी जनता की जेब से पैसे निकालकर धन्ना सेठों की जेब में डालने का एक तरीक़ा है।

बैंक कर्मचारियों की यूनियनें लम्बे समय से सरकार से माँग कर रही हैं किबैंकों का पैसा दबाये बैठे लोगों के नाम उजागर किये जायें। उनका कहना है कि सभी जानते हैं कि डूबे क़र्ज़ों का भारी हिस्सा बड़े पूँजीपतियों और अमीरों को दिया गया है। बहुत से ऐसे क़र्ज़ों के बारे में मालूम है कि वे जानबूझकर, धोखाधड़ी से दबाये गये हैं या दूसरी कम्पनियों में लगा दिये हैं। लेकिन भ्रष्ट मोदी सरकार अपने चहेतों को बचाने के लिए कोई नाम उजागर नहीं कर रही है।

नेताओं को न्यौता!

– शैलेन्द्र

(प्रसिद्ध गीतकार शैलेन्द्र ने यह गीत 1951-52 में हुए आज़ाद भारत के पहले आम चुनाव के समय लिखा था।)

लीडर जी, परनाम तुम्हें हम मज़दूरों का,
हो न्यौता स्वीकार तुम्हें हम मज़दूरों का;
एक बार इन गन्दी गलियों में भी आओ,
घूमे दिल्ली-शिमला, घूम यहाँ भी जाओ!

जिस दिन आओ चिट्ठी भर लिख देना हमको
हम सब लेंगे घेर रेल के इस्टेशन को;
'इन्क़लाब' के नारों से, जय-जयकारों से –
ख़ूब करेंगे स्वागत फूलों से, हारों से!

दर्शन के हित होगी भीड़, न घबरा जाना,
अपने अनुगामी लोगों पर मत झुँझलाना;
हाँ, इस बार उतर गाड़ी से बैठ कार पर
चले न जाना छोड़ हमें बिरला जी के घर!

चलना साथ हमारे वरली की चालों में,
या धारवि के उन गन्दे सड़ते नालों में –
जहाँ हमारी उन मज़दूरों की बस्ती है,
जिनके बल पर तुम नेता हो, यह हस्ती है!

हम तुमको ले साथ चलेंगे उस दुनिया में,
सुकुमारी बम्बई पली है जिस दुनिया में,
यह बम्बई, आज है जो जन-जन को प्यारी,
देसी-परदेसी के मन की राजदुलारी!

हम तुमको ले साथ चलेंगे उस दुनिया में,
नवयुवती बम्बई पली है जिस दुनिया में,
किन्तु, न इस दुनिया को तुम ससुराल समझना,
बन दामाद न अधिकारों के लिए उलझना।

हमसे जैसा बने, सब सत्कार करेंगे –
ग़ैर करें बदनाम, न ऐसे काम करेंगे,
हाँ, हो जाये भूल-चूक तो नाम न धरना,
माफ़ी देना नेता, मन मैला मत करना।

जैसे ही हम तुमको ले पहुँचेंगे घर में,
हलचल सी मच जायेगी उस बस्ती भर में,
कानाफूसी फैल जायेगी नेता आये –
गाँधी टोपी वाले वीर विजेता आये।

खद्दर धारी, आज़ादी पर मरने वाले
गोरों की फ़ौज़ों से सदा न डरने वाले
वे नेता जो सदा जेल में ही सड़ते थे
लेकिन जुल्मों के ख़िलाफ़ फिर भी लड़ते थे।

वे नेता, बस जिनके एक इशारे भर से –
कट कर गिर सकते थे शीश अलग हो धड़ से,
जिनकी एक पुकार ख़ून से रँगती धरती,
लाशों-ही-लाशों से पट जाती यह धरती।

शासन की अब बाग़डोर जिनके हाथों में,
है जनता का भाग्य आज जिनके हाथों में।
कानाफूसी फैल जायेगी नेता आये –
गाँधी टोपी वाले शासक नेता आये।

घिर आयेगी तुम्हें देखने बस्ती सारी,
बादल दल से उमड़ पड़ेंगे सब नर-नारी,
पंजों पर हो खड़े, उठा बदन, उझक कर,
लोग देखने आवेंगे धक्का-मुक्की कर।

टुकुर-मुकुर ताकेंगे तुमको बच्चे सारे,
शंकर, लीला, मधुकर, धोंडू, राम पगारे,
जुम्मन का नाती क़रीम, नज़्मा बुद्धन की,
अस्सी बरसी गुस्सेवर बुढ़िया अच्छन की।

वे सब बच्चे पहन चीथड़े, मिट्टी साने,
वे बूढ़े-बुढ़िया, जिनके लद चुके ज़माने,
और युवकगण जिनकी रग में गरम ख़ून है,
रह-रह उफन उबल पड़ता है, नया ख़ून है।

घिर आयेगी तुम्हें देखने बस्ती सारी,
बादल दल से उमड़ पड़ेंगे सब नर-नारी,
हेच काय रे कानाफूसी यह फैल जायेगी,
हर्ष क्षोभ की लहर मुखों पर दौड़ जायेगी।

हाँ, देखो आ गया ध्यान बन आये न संकट,
बस्ती के अधिकांश लोग हैं बिलकुल मुँहफट,
ऊँच-नीच का जैसे उनको ज्ञान नहीं है,
नेताओं के प्रति अब वह सम्मान नहीं है।

उनका कहना है, यह कैसी आज़ादी है,
वही ढाक के तीन पात हैं, बरबादी है,
तुम किसान-मज़दूरों पर गोली चलवाओ,
और पहन लो खद्दर, देशभक्त कहलाओ।

तुम सेठों के संग पेट जनता का काटो,
तिस पर आज़ादी की सौ-सौ बातें छाँटो।
हमें न छल पायेगी यह कोरी आज़ादी,
उठ री, उठ, मज़दूर-किसानों की आबादी।

हो सकता है, कड़वी-खरी कहें वे तुमसे,
उन्हें ज़रा मतभेद हो गया है अब तुमसे,
लेकिन तुम सहसा उन पर गुस्सा मत होना,
लायेंगे वे जनता का ही रोना-धोना।

वे सब हैं जोशीले, किन्तु अशिष्ट नहीं हैं,
करें तुमसे बैर, उन्हें यह इष्ट नहीं है,
वे तो दुनिया बदल डालने को निकले हैं,
हिन्दू, मुस्लिम, सिख, पारसी, सभी मिले हैं।

फिर, जब दावत दी है तो सत्कार करेंगे,
ग़ैर करें बदनाम, न ऐसे काम करेंगे,
हाँ, हो जाये भूल-चूक तो नाम न धरना,
माफ़ी देना नेता, मन मैला मत करना।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2017-2019
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 20, प्रत्येक माह

पूँजीपतियों की पार्टियों को जानो

भारतीय जनता पार्टी किसकी पार्टी है?

1. भारतीय जनता पार्टी देश के बड़े पूँजीपतियों की पार्टी है। बड़े वित्तीय-औद्योगिक पूँजीपतियों के अलावा व्यापारी वर्ग और कुलकों का एक हिस्सा भी इसका समर्थन करता है। उच्च मध्यवर्ग का एक हिस्सा भी इसका समर्थन करता है।
2. भाजपा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का चुनावी मोर्चा है। आरएसएस कई बेमेल तत्वों से बना एक कैडर-आधारित प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन है। यह कई संगठन और मोर्चे बनाकर काम करता है। हर जगह उसकी कई प्रकार की गुण्डावाहिनियाँ हैं। यह सब मिलकर भाजपा को सत्ता में पहुँचाने और उसके ज़रिये संघ के एजेण्डा को पूरा करने में लगे रहते हैं।
3. भाजपा को 2017-18 में पूँजीपतियों से लगभग 1035 करोड़ रुपये का चन्दा मिला है। भाजपा के कुल चन्दे के लगभग एक-चौथाई का ही स्रोत पता है। अन्य चन्दा अज्ञात स्रोतों से आया है। (ये 1035 करोड़ भी महज़ वह चन्दा है जिसके बारे में बताया गया है। इसके अलावा अवैध तरीक़ों से बड़े पैमाने पर नक़दी, गाड़ियाँ, हवाई जहाज़, हेलीकॉप्टर, मकान आदि के तौर पर उसे पूँजीपतियों से मदद मिलती है, उसका तो कोई हिसाब ही नहीं है।)
4. इस चन्दे के बूते भाजपा ने देश भर में अपने 600 नये फ़ाइव स्टार ऑफ़िस बनवाये हैं।
5. भाजपा चुनावी चन्दे के स्रोतों की रही-सही पारदर्शिता को भी समाप्त करने के पक्ष में है, ताकि देश-विदेश के मालिक, ठेकेदार और दलाल उसे खुलकर चन्दा दें।
6. सभी पार्टियों में से भाजपा में सबसे अधिक करोड़पति सांसद हैं, जो कि ख़ुद ही मालिक व ठेकेदार हैं।
7. सभी पार्टियों में से सबसे ज़्यादा अपराध के आरोपी सांसद भाजपा में हैं। स्त्रियों के ख़िलाफ़ अपराध करने के सबसे अधिक आरोपी सांसद व मन्त्री भाजपा में हैं।
8. भाजपा सरकार ने पाँच ही वर्षों के भीतर बड़े-बड़े घोटाले करने में तमाम पार्टियों को पीछे छोड़ दिया है। राफ़ेल घोटाला, नोटबन्दी घोटाला, फ़सल बीमा घोटाला, एनपीए घोटाला, अडानी पॉवर घोटाला, रिलायंस गैस घोटाला, आईएलएफ़एस घोटाला आदि। इसकी राज्य सरकारें भी व्यापम घोटाला (मध्य प्रदेश), दाल घोटाला (महाराष्ट्र), पीडीएस घोटाला (छत्तीसगढ़), सृजन घोटाला (बिहार), अवैध खनन घोटाला (कर्नाटक) जैसे दर्जनों घोटाले करके सिर से पाँव तक भ्रष्टाचार के कीचड़ में सनी हुई हैं।
9. भाजपा के राज में जनता का पैसा गबन करने वाले सबसे अधिक अपराधी पूँजीपति देश छोड़कर भागे हैं जैसे कि नीरव मोदी, ललित मोदी, विजय माल्या, मेहुल चौकसी आदि। अब तक क़रीब तीन दर्जन पूँजीपति जनता के हज़ारों करोड़ रुपये हड़पकर देश से भाग चुके हैं। ज़ाहिर है, सरकार की जानकारी के बिना ऐसे अपराधियों का भागना मुमकिन नहीं है।
10. ख़ुद इस सरकार के आँकड़ों के मुताबिक़ भाजपा के पाँच साल के राज में क़रीब पौने पाँच करोड़ लोगों ने रोज़गार से हाथ धोया है और बेरोज़गारी पाँच दशकों के उच्चतम स्तर पर पहुँच गयी है, जिसका कारण है कि भाजपा सरकार ने देश की मेहनत और क़ुदरत की खुली लूट की छूट पूँजीपति वर्ग को दे दी है और रोज़गार बढ़ाना तो दूर, रही-सही नौकरियों को भी ख़त्म करना शुरू कर दिया है।
11. इन सभी कुकर्मों को छिपाने के लिए भाजपा अब 'पाकिस्तान-पाकिस्तान', 'हिन्दू-मुसलमान', 'मन्दिर-मस्जिद' चिल्ला रही है, देश में दंगे भड़काने की कोशिश कर रही है, मेहनतकश जनता को बाँटने की कोशिश कर रही है।
12. आरएसएस और भाजपा हमेशा उग्र अन्धराष्ट्रवादी भावनाएँ भड़काते हैं। उनकी "हिन्दुत्व" की राजनीति धार्मिक अल्पसंख्यकों को दोयम दर्जे का बनाने की कोशिश करती है और उनके विरुद्ध बहुसंख्यक हिन्दुओं के मन में ज़हर भरने का काम करती है। पिछले पाँच वर्षों के दौरान देशभर में मुसलमानों और ईसाइयों पर हिंसक हमलों की घटनाओं में भारी बढ़ोत्तरी हुई जिनके अपराधियों को सत्ता का खुला समर्थन और संरक्षण मिला।
13. आरएसएस और भाजपा की विचारधारा और राजनीति धार्मिक अल्पसंख्यकों को ही नहीं, बल्कि दलितों, आदिवासियों और स्त्रियों को भी नीचे रखती है और इनके शासन काल में इन तबक़ों के दमन-उत्पीड़न में रिकॉर्ड-तोड़ बढ़ोत्तरी हुई है। मोदी राज में भारत "स्त्रियों के लिए दुनिया का सबसे असुरक्षित देश" बन गया।
14. जनता के असली मुद्दों और अपनी नाकामियों से लोगों का ध्यान भटकाने और नफ़रत के ज़हर को फैलाने के लिए भाजपा अपने पूँजीपति मालिकों के मीडिया (टीवी चैनलों, अख़बारों आदि) के ज़रिये तो धुआँधार झूठा प्रचार करती ही है, इसने अपने 'आईटी सेल' में तनख़्वाह पर हज़ारों लोगों को भरती कर रखा है जो दिनों-रात व्हॉट्सऐप, फ़ेसबुक, वेबसाइटों आदि के ज़रिये समाज में झूठी ख़बरें फैलाते हैं, सरकार के विरोधियों को बदनाम करते हैं और धर्म, जाति, अन्धराष्ट्रवाद आदि के नाम पर घृणा को बढ़ावा देते हैं।

क्या आप इस साज़िश का शिकार होंगे? या आप फ़ासीवादी भाजपा की असलियत को पहचानेंगे? क्या आपको लगता है कि पूरी तरह से अम्बानी-अडानी-टाटा-बिड़ला आदि के फेंके टुकड़ों पर पलने वाली यह पार्टी देश के मज़दूरों, आम मेहनतकशों और निम्न मध्यवर्ग के लिए कुछ करेगी? नहीं! पूँजीपति वर्ग की आज के दौर में इस प्रमुख पार्टी की असलियत को पहचानना होगा और लोगों के बीच इसका पूरी तरह से पर्दाफ़ाश करना होगा।

कांग्रेस किसकी पार्टी है?

1. कांग्रेस पार्टी देश के बड़े पूँजीपतियों की सबसे पुरानी पार्टी है। बड़े वित्तीय-औद्योगिक पूँजीपतियों के अलावा व्यापारी वर्ग और कुलकों का एक हिस्सा भी शुरू से इसका समर्थन करता आया है। उच्च मध्यवर्ग का एक हिस्सा भी इसका समर्थक है।
2. 1947 में आज़ादी के बाद कांग्रेस के नेतृत्व में देश के विकास का जो पूँजीवादी रास्ता चुना गया उसी ने आज देश को इस हालत में पहुँचाया है।
3. कांग्रेस को 2017-18 में इन पूँजीपतियों से लगभग 200 करोड़ रुपये का चन्दा मिला है। कहने की ज़रूरत नहीं कि इसे पूँजीपतियों से मिलने वाली कुल रक़म का यह एक छोटा हिस्सा है। पहले इसे पूँजीपतियों के चन्दे का सबसे बड़ा हिस्सा मिलता था, लेकिन वित्तीय संकट के दौर में भाजपा पूँजीपतियों की पहली पसन्द बन गयी है क्योंकि वह जनता को कुचलने और उसे आपस में बाँटने का काम ज़्यादा अच्छी तरह कर सकती है। लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था को "मैनेज" करने के अपने लम्बे अनुभव के कारण कांग्रेस फिर से पूँजीपतियों की चहेती बन सकती है और वह इसके लिए पूरा ज़ोर लगा रही है।
4. कांग्रेस ही वह पार्टी है जिसने ठेकेदारी, निजीकरण, उदारीकरण की नीतियों को बड़े पैमाने पर बढ़ावा देने की शुरुआत 1991 में नयी आर्थिक नीतियों के साथ की थी।
5. कांग्रेस ने ही "समाजवाद" का जुमला उछालकर पहले बैंकों का राष्ट्रीकरण किया ताकि जनता से जुटाये गये पैसों से अरबों रुपये का क़र्ज़ टाटा, बिड़ला आदि को दिया जा सके। बाद में, कांग्रेस-नीत यूपीए सरकार ने इस क़र्ज़ को माफ़ भी कर दिया। यानी जनता का पैसा पूँजीपतियों की जेबों में डाल दिया गया।
6. पूँजीपतियों के "टाटा-बिड़ला प्लान" को लागू करते हुए कांग्रेस ने पहले जनता के पैसों से देश भर में सार्वजनिक क्षेत्र के कारख़ाने, यातायात-परिवहन, बिजली आदि का ढाँचा खड़ा किया क्योंकि उस वक़्त पूँजीपतियों के पास इनके लिए संसाधन ही नहीं थे। बेहद कम क़ीमत पर इन सबका भरपूर फ़ायदा उठाकर जब पूँजीपतियों ने अपनी पूँजी को सैकड़ों गुना बढ़ा लिया, तो कांग्रेस के ही शासन में उन्हें औने-पौने दामों पर पूँजीपतियों को बेचने की शुरुआत हुई जिसे भाजपा ने अन्धाधुन्ध रफ़्तार से बढ़ाया है।
7. आज़ादी के बाद हुए जीप घोटाले से लेकर 2-जी घोटाले तक इस पार्टी ने घोटाले करने का एक काला इतिहास लिखा था। केन्द्र और राज्यों की कांग्रेस सरकारों ने भ्रष्टाचार के एक से एक बढ़कर सूरमा पैदा किये। हालाँकि भाजपा के पाँच साल के शासन में ही घपले-घोटालों की रफ़्तार कांग्रेस से आगे निकल गयी है।
8. देश में साम्प्रदायिक राजनीति को बढ़ावा देने का अपराध कांग्रेस के सिर पर भी है। आरएसएस को तमाम तरीक़ों से बचाने और बढ़ाने का काम कांग्रेस ने भी किया है। 1984 में सिख-विरोधी क़त्लेआम के ख़ून के धब्बे इसके दामन से कभी नहीं धुल सकते।
9. लोगों को जाति-धर्म-भाषा-क्षेत्र के आधार पर बाँटने की जो नीतियाँ कांग्रेस ने शुरू कीं, उनका भरपूर फ़ायदा उठाकर आरएसएस ने अपने को बढ़ाया और साथ ही देश भर में जाति-क्षेत्र-भाषा की राजनीति करने वाली क्षेत्रीय शक्तियों को बढ़ने का मौक़ा मिला।
10. कांग्रेस के नेतृत्व में आज़ादी के बाद जो संविधान सभा बुलायी गयी थी, वह देश की जनता ने नहीं बल्कि देश की कुल 11 प्रतिशत आबादी ने चुनी थी जिसमें पूँजीपतियों और ज़मींदारों के ही प्रतिनिधि भरे हुए थे। इस प्रकार देश की राजनीतिक बुनियाद यानी संविधान बनाने में देश की जनता को ही कोई भूमिका नहीं दी गयी।
11. कांग्रेस ने देश में मज़दूरों और आम जनता का दमन करने के रिकॉर्ड क़ायम किये हैं। बेलछी-बेलाडीला, पन्तनगर, स्वदेशी कॉटन मिल, अरवल जैसे बर्बर गोलीकाण्डों से लेकर मारुति सुज़ुकी और होण्डा के मज़दूरों के दमन तक में, कांग्रेस ने पूरी वफ़ादारी से पूँजीपतियों की हित रक्षा में मज़दूरों-मेहनतकशों पर डण्डे और गोलियाँ चलवायी हैं। कांग्रेस ने देश में जनता को दबाने-कुचलने के लिए एक विशाल दमनतन्त्र खड़ा किया है और तमाम ऐसे काले क़ानून बनाये हैं जिनके आगे अंग्रेज़ों का बनाया वह रौलट ऐक्ट भी कुछ नहीं है जिसके विरोध में हुई सभा पर जलियाँवाला बाग़ में गोलियाँ बरसायी गयी थीं।
12. मज़दूरों ने लम्बे संघर्षों के बाद लड़कर जो अधिकार हासिल किये थे और श्रम क़ानूनों के तहत जो सुविधाएँ हासिल की थीं, उन्हें सिलसिलेवार ढंग से कमज़ोर करने का काम कांग्रेस ने ही शुरू किया था जिसे भाजपा ने चरम पर पहुँचा दिया।
13. कांग्रेस के मौजूदा चुनाव घोषणापत्र में तमाम लोकलुभावन वायदों के साथ यह भी कहा गया है कि पूँजीपतियों को उद्योग लगाने व चलाने की पूरी छूट दी जायेगी और उन्हें धन्धा करने की हर सुविधा दी जायेगी। यानी, श्रम क़ानूनों सम्बन्धी सभी बाधाओं से मुक्ति का कांग्रेस ने पूँजीपति वर्ग से वायदा किया है। यही असली वायदा है! बाक़ी धोखा है!

– भाजपा से तंग आकर पूँजीपतियों की दूसरी बड़ी पार्टी कांग्रेस को वोट देना मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए कोई विकल्प नहीं है। अदल-बदलकर पूँजीपतियों के कभी एक, तो कभी दूसरे सेवक से अपने को लुटवाते रहना ही मेहनतकशों की क़िस्मत नहीं हो सकती। उन्हें अपना विकल्प खड़ा करना होगा, अपनी क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करनी होगी जो संसदीय राजनीति के मंच पर भी उनकी आवाज़ को मज़बूती के साथ उठाये और साथ ही, इस पूरी पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंककर एक ऐसी व्यवस्था के लिए संघर्ष की अगुवाई कर सके जिसमें उत्पादन, राज-काज और समाज के पूरे ढाँचे पर मेहनतकशों का वास्तव में नियन्त्रण हो। फ़ैसले की ताक़त वास्तव में उत्पादन करने वाले वर्गों के हाथों में हो।

ऐसी पार्टी खड़ी करने की शुरुआत 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' के निर्माण के साथ हो गयी है।

'मज़दूर बिगुल' इस नयी पहल के साथ है।

(RWPI के दिल्ली-हरियाणा क्षेत्र के बुलेटिन 'मेहनतकश की आवाज़' के आधार पर प्रस्तुत)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक: सुखविन्दर, अभिनव • सम्पाकीय पता: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006